नित्यकर्मप्रकाश

लेखक

श्री भवानीशंकर त्रिवेदी

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(मानितविश्वविद्यालयः)
नवदेहली -110016

संस्कृत-विद्यापीठ ग्रन्थमाला का सप्तम पुष्प

नित्यकर्मप्रकाश

प्रधान सम्पादक
प्रो० वाचस्पति उपाध्याय
लेखक
श्री भवानी शंकर त्रिवेदी
सम्पादक
प्रो० रमेश कुमार पाण्डेय

प्रकाशकः
श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
(मानित विश्वविद्यालय)

प्रकाशकः
श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
(मानितविश्वविद्यालय)
कटवारिया सराय, नई दिल्ली–१६

द्वितीय संस्करण २००५

ISBN : 81-87987-01-4

मूल्य : रु० ९०/–

मुद्रकः
अमर प्रिंटिंग प्रैस
८/२५, विजय नगर, दिल्ली–९

नैवेद्यम्

अनन्तक्लेशभाजने संसारसागरे दूयमानानां कृपणदशावलोकनेन दयमानमना भगवान् वेदः सकलक्लेशसन्तरणसाधनं स्वधर्माचरणमेवाह। ज्ञानोत्पत्तयेऽपि निरसनीयं पापं समनुष्ठितेन धर्मेणैव। अत आह भगवती श्रुतिः- धर्मेण पापमपनुदतीति। कषाये कर्मभिः पक्वे ततो ज्ञानं प्रवर्तत इति स्मृतिरपि ब्रह्मप्राप्तिसाधनं ज्ञानं वर्णाश्रमकर्मापेक्षमित्यनुवदति। महर्षिभिरपि विस्रब्धं प्रत्यपादि सार्वभौमं प्रामाण्यं कर्मवादस्येति विदितमेव प्रेक्षावतां तदेवं वाचामगोचरं वैभवं धर्मस्येति नोपपादनमपेक्षते। भगवता बादरायणेन स्वशारीरकशास्त्रे आप्रयाणाधिकरणे अग्निहोत्रादीनां यावज्जीवमनुष्ठेयता उपक्षिप्ता। श्रौतेः कर्मभिर्यद्येकतः कल्मषमपनीयचैतन्यमाधीयते तदपरतो ब्रह्मसायुज्ययोग्यं सम्पाद्यते शरीरम्। अतो बभाण भगवान् मनुरेवम्-

स्वाध्यायव्रतहोमैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुरिति।

योऽनुतिष्ठति प्रत्यहं श्रौतेन वर्त्मना सन्ध्यातर्पणस्वाध्यायादिकं यथाकालं तत्प्रज्ञा नूनमात्मनि निषीदति धिय आत्मनिष्ठत्वे सुतरां विलीयन्ते भ्रान्तिर्जाड्यं भेदादिकञ्चात्मसाक्षात्कारप्रतिबन्धकम्। आसादयति स्वतो मानसं नैर्मल्यम्, अतः शास्त्रोक्तेन विधिना नित्यनैमित्तिककर्मणामनुष्ठानमविच्छेदेन कर्त्तव्यम्। यापनीयश्च भगवत्प्रीणक्रियाकलापेन प्रातरारभ्यानिशान्तादबन्ध्यः कालः। देशकालावस्थानुसारेण विधौ सङ्क्षेपविस्तारस्वीकारोऽपि न शास्त्रीयां सम्मतिं व्यभिचरति। अनुष्ठेयनित्यकर्मविच्छेद एव जनयति बुद्धिकालुष्यम्, भ्रंशयति स्वरूपतः संयुनक्ति च दुर्मतिम्। नित्याद्यनुष्ठानकाले निद्रालस्यापि परवशं नरमालोक्य शिष्टैरेवमनुशिष्टं यद्यस्य यथावन्नित्यनैमित्तिकानुष्ठान-मभविष्यत्तदा सञ्चितदुरितक्षयोऽभविष्यत्, न चायं विहितमकार्षीदतः

प्रत्यवायी भविष्यतीति। उत उच्यते-

अकुर्वन् विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन्।
प्रसञ्जंश्चेन्द्रियार्थेषु नरः पतनमृच्छति।।

अतः प्रसज्यमानप्रत्यवायपरिहारार्थं सन्ध्यादिनित्यकर्माचरणीयम् अप्रमत्तेन। आवश्यकञ्चावबोधनं श्लक्ष्णेन प्रकारेव। आम्नाय विद्याविचक्षणानां पण्डितश्रीभवानीशङ्करत्रिवेदमहाभागानां प्रथितैवैवंविधलोककल्याणमये कार्ये प्रवृत्तिः। इदानीमनुपलम्भ एव प्रायः सङ्क्षिप्तस्य वर्तमानसमयोपयुक्तस्य नित्यकृत्यबोधकस्य ग्रन्थस्य, सत्स्वपि ग्रन्थान्तरेषु। पण्डितवर्यैरज्ञानादनुदिनक्षीय-माणधर्मनिष्ठामालक्ष्य नित्यकर्मज्ञानस्योपयोगितां च यथावदवधार्य अपेक्षित-विषयसमावेशेन प्रणीतोऽयं ग्रन्थो-नित्यकर्मप्रकाश इति। शास्त्रसम्मतां पद्धतिमनुसृत्य सुविपुलां विधिवितर्तिं च सङ्क्षिप्य समीचीनया सर्वहृदयङ्गमया सरण्या प्रकरणजातं यथाक्रमं न्यधायि येनास्य स्वरूपं समधिकसुधी-समुदायाकर्षणकारणं स्यात्। यौगपद्येन विषयसम्प्राप्तौ सौविध्यमाधीयते तदेवमत्रत्यं सर्वमपि सङ्कलनं स्वसमुन्नयनकामानां परमोपादेयतया समाश्रेयं सम्पद्यतामिति परमात्मानं प्रार्थये।

प्रो. वाचस्पति उपाध्यायः

सम्पादकीय
(प्रथम संस्करण का)

भारतीय संस्कृति और संस्कृत के तत्त्व-ज्ञान का प्रसार-प्रचार श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए विद्यापीठ शोध, प्रकाशन, शिक्षण एवं प्रशिक्षण के द्वारा विभिन्न प्रयास कर रहा है। विद्यापीठ के शोध एवं प्रकाशन विभाग ने गत वर्षों में वैदिक विज्ञान, व्याकरण और दर्शन की विभिन्न शाखाओं पर उत्तम ग्रन्थों का प्रकाशन किया है।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन एक विशेष उद्देश्य को दृष्टि में रखकर हाथ में लिया गया है। जो लोग इस राष्ट्र की परम्पराओं एवं मर्यादाओं में विश्वास रखते हैं, उनकी यह लगातार मांग रही है कि उन्हें शास्त्रीय पद्धति और आधुनिक दृष्टि से समन्वित इस प्रकार की कोई सुन्दर पुस्तक उपलब्ध हो, जिससे वे बिना किसी की सहायता के भी अपने सांस्कृतिक कृत्यों का निर्वाह कर सकें। इस दृष्टि से विद्यापीठ की शोध और प्रकाशन समिति ने श्रद्धेय डॉ० रामधारीसिंहजी दिनकर की अध्यक्षता में यह निर्णय किया कि कर्मकाण्ड पर एक ग्रंथमाला के प्रकाशन का काम हाथ में लिया, जाए, जिसके प्रथम पुष्प के रूप में 'नित्यकर्मप्रकाश' आपके समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस पुस्तक को पाँच अंशु में विभाजित किया गया है। प्रथम अंशु में एक उत्तम नागरिक के जानने योग्य कुछ आवश्यक बातों का संग्रह किया गया है। द्वितीय अंशु में प्रातःकाल के नित्य-कृत्यों

के विवेचन के साथ प्रातः स्मरण आदि उद्बोधक प्रसंग संकलित किए गये हैं। तृतीय अंशु में संध्या और पञ्चमहायज्ञों की विधि दी गई है। चतुर्थ अंशु में देवार्चन और पञ्चम अंशु मे देवस्थानों में पूजा के समय पढ़ी जानेवाली आरतियों का समावेश है। यह सब हिन्दी माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है, जिससे कि सामान्य जनता को भी इससे प्रकाश और मार्गदर्शन मिल सके।

पुस्तक के लेखक श्री भवानी शंकर त्रिवेदी संस्कृत और हिन्दी के अच्छे लेखक हैं और उनके पास शास्त्रीय ज्ञान के साथ-साथ आधुनिक दृष्टि भी है। यही कारण है कि यह पुस्तक इस रूप में प्रस्तुत हो सकी है।

इन्हीं दो शब्दों के साथ मैं यह पुस्तक पाठकों को समर्पित करता हूँ।

–डॉ० मण्डनमिश्र

सम्पादकीय

अथोच्यते गृहस्थस्य नित्यकर्म यथाविधि।
यत्कृत्वानृण्यमाप्नोति दैवात् पैश्याच्च मानुष्यात्।।

नित्य कर्मों को यथाविधि सम्पन्न करके ही मनुष्य देव सम्बन्धी, पितृ सम्बन्धी तथा मनुष्य सम्बन्धी तीनों ऋणों से मुक्त होता है। ऋणों की मुक्ति के उपरान्त ही मनुष्य परम पुरुषार्थ मोक्ष की पात्रता धारण कर सकता है, यह शास्त्र वचन है। इस प्रकार मनुष्य के जीवन में नित्यकर्म की बड़ी महत्ता है। मनुष्य को कर्तव्यपालन एवं धर्माचरण के प्रति सदा जागरूक होना चाहिए।

भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु निरन्तर संपृक्त विद्यापीठ ने आवश्यकता का अनुभव कर नित्यकर्म प्रकाश का प्रकाशन किया था। नित्यकर्मानुष्ठान एवं सन्ध्या-वन्दनादि विधियों की प्रामाणिक पद्धति का अनुसरण करके तैयार की गई यह पुस्तक शीघ्र ही अनुपलब्ध हो गयी, जिसका पुनः सम्पादन करके प्रकाशन करने का निर्देश माननीय कुलपति प्रो० वाचस्पति उपाध्याय जी ने कृपापूर्वक प्रदान किया, जिसके परिणामस्वरूप यह पुस्तक पुनः प्रकाशित हो सकी है।

प्रस्तुत संस्करण आकार एवं प्रकार में भी भिन्न प्रतीत होगा, किन्तु मूलग्रन्थ में सम्पादन सम्बन्धी परिवर्तन मात्र ही किए गए हैं। मुद्रण सम्बन्धी त्रुटियों के परिहार का पर्याप्त प्रयास किया गया है। आशा है कि धर्मानुरागी महानुभावों को यह संस्करण रुचिकर प्रतीत होगा।

प्रो० रमेशकुमार पाण्डेय

वैदिक-राष्ट्रिय प्रार्थना

ॐ आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा
राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्।
दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जीष्णू
रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्।।
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्
योगक्षेमो नः कल्पताम्।। (यजुर्वेद २२/२२)

भारतवर्ष हमारा प्यारा अखिल विश्व से न्यारा।
सब साधन से रहे समुन्नत भगवन् देश हमारा।
हों ब्राह्मण विद्वान् राष्ट्र में ब्रह्मतेजव्रतधारी।
महारथी हों शूर धनुर्धर क्षत्रिय लक्ष्यप्रहारी।
गौएँ भी अतिमधुर दुग्ध की रहें बहाती धारा।
सब साधन से रहे..........

भारत के बलवान वृषभ हों, होवें हय द्रुतगामी।
महिलाएँ भी सती सुन्दरी करें वीर-अगवानी।
जिनकी गुणगाथा से गुंजित दिग्-दिगन्त हो सारा।
सब साधन से रहे...........

नित्यकर्मरत लोक सभासद हों वे विज्ञविचारी।
अन्नोषध में लगे प्रचुर फल घन बरसाएँ वारी।
योग हमारा क्षेम हमारा स्वतः सिद्ध हो सारा।
सब साधन से रहे समुन्नत भगवन् देश हमारा।

ॐ अग्ने नय सुपथा रायेऽस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम।

हे अग्नि अर्थात् आगे की ओर ले जाने वाले भगवन् (क्योंकि आप सबको आगे बढ़ाने वाले हैं) अतः हमें भी ऐसे सुमार्ग पर ले चलो, जिससे हमारा कल्याण हो। हे भगवन् आप हमारे सब कर्मों को जानते हैं। इसलिए बुरे विचार और पापकर्मों से संघर्ष कर हम उन पर विजय प्राप्त करें, ऐसी हमें शक्ति दीजिए। हे भगवन् हम बार-बार आपको प्रणाम करते हैं।

आत्म-निवेदन

कर्मकाण्ड प्रकाश नामक ग्रन्थ का यह प्रथम भाग 'नित्यकर्मप्रकाश' धर्म-प्राण आस्तिकजनों की सेवा में भेंट करते हुए मेरा हृदय आज हर्ष से गद्गद् हो रहा है। बहुत दिनों से मेरे मन की साध थी कि हिन्दुओं के धर्म-कर्म और संस्कारों के सम्बन्ध में कोई सरलतम भाषा में लिखी पुस्तक होनी चाहिए। प्रभुकृपा से यह साध पूरी हुई। पुस्तक तैयार हो गई और 'श्रीलालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ' जैसी ख्याति-लब्ध संस्था के द्वारा उसका प्रकाशन हो रहा है, यह वास्तव में मेरे लिए गौरव की बात है।

पुस्तक-निर्माण-प्रक्रिया की कहानी काफी लम्बी है। इसकी पाण्डुलिपि अनेक बार सम्पादित संशोधित हुई। इस संपादन-संशोधन-प्रक्रिया में अनेक मान्य विद्वानों ने हाथ बँटाया। विशेषरूप से श्रद्धेय पं० शिवदास जी मिश्र (प्राध्यापक श्री लालबहादुरशास्त्री विद्यापीठ) ने पुस्तक की प्रतिपाद्य सामग्री का बड़ी निष्ठा के साथ आद्यन्त अवलोकन किया।

इसी प्रकार डा० रुद्रदेव त्रिपाठी के सहयोग और परमादरणीय म० म० पं० परमेश्वरानन्दजी शास्त्री तथा विद्वत्प्रवर श्रीअमीरचन्द्रजी शास्त्री का कृपापूर्ण मार्गदर्शन इस कार्य में सदा लेखक को प्राप्त रहा है। श्री पं० लल्लनकृष्णजी पण्ड्या एवं श्री पं० बदरीनारायण जी पंचोली आदि विद्वानों ने भी आत्मीय भाव से ग्रन्थ का अवलोकन किया है। वास्तव में पुस्तक को वर्तमान सर्वोपयोगी शास्त्रसम्मत रूप उक्त विद्वज्जनों की कृपा से ही प्राप्त हो सका है।

यह ध्यान रहे कि नित्य-कर्म-सम्बन्धी संध्या आदि की प्रक्रिया एवं विधि-विधान में कहीं कुछ तारतम्य दिखाई दे जाना स्वाभाविक

है। जैसा कि आजकल बहुप्रचलित सन्ध्या की कई पुस्तकों में ॐ वाक् वाक् आदि हृदय पवित्रीकरण के तथा ॐ भूः पुनातु शिरसि आदि मार्जन के मंत्र नहीं दिए गए। किन्तु आह्निकसूत्रावलि आदि प्रामाणिक ग्रन्थों में यह विधान है। इसी प्रकार 'दुर्मित्रिया' आदि मंत्र भी अनेक प्रतियों में अनुपलब्ध हैं। और 'ऋतञ्च सत्यंच' आदि मंत्र का पठनक्रम और विनियोग के पाठ भी पृथक् पृथक् हैं।

गुरुजनों का यह कथन सर्वसम्मत एवं शास्त्रानुमोदित है कि 'सन्ध्या' का अर्थ है, सम्यक् ध्यान। और गायत्री-जप ही वह सम्यक् ध्यान है। 'तज्जपस्तदर्थभावनम्' प्राणायाम, अघमर्षण अंगन्यास, सूर्योपस्थान आदि इसके पूर्वांग उत्तरांग ही तो हैं। और साथ ही यह भी कि भिन्न-भिन्न शाखाध्यायियों की सन्ध्यावन्दन की विधि भी स्व स्व शाखानुसार ही हैं। विज्ञजन अपनी परम्परा के अनुसार जिस विधि से सन्ध्यावन्दन करते चले आ रहे हैं, उन्हें तदनुकूल ही बरतना चाहिए।

प्रस्तुत पुस्तक में 'सन्ध्या' आदि कार्य-विधि आह्निकसूत्रावलि व बहुसम्मत पद्धतियों के आधार पर दी गई है। अनन्तश्रीविभूषित पूज्यपाद अमृतवाग्भवजी महाराज के श्रीचरणों में बैठकर यत्किंचित् ज्ञान प्राप्त करने का सौभाग्य इस जन को प्राप्त होता रहा है। यह सब महामहिम आचार्यचरण एवं वेदविद्यानिधि श्री पं. शिवदासजी मिश्र आदि विद्वज्जनों की ही कृपा का फल है कि शास्त्र-सम्मत सर्वजनोपयोगी यह पुस्तक प्रस्तुत हो सकी है।

श्रीयुत् आदरणीय राष्ट्रकवि श्रीरामधारी सिंह जी दिनकर के प्रेरणाप्रद आशीर्वाद के फलस्वरूप ही यह पुस्तक प्रस्तुत होकर प्रकाश में आ पाई है। नित्यकर्म और संस्कार आदि के संबन्ध में 'कर्मकाण्डप्रकाश' नामक इस पुस्तक का लेखन और प्रकाशन वास्तव में आपकी ही प्रेरणा से संभव हो सका है। श्रीलालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ के निदेशक श्रीयुत् डा० मण्डन मिश्रजी ने इस पुस्तक के प्रकाशन में तत्परता दिखाते हुए जिस प्रकार मनोयोगपूर्वक पुस्तक को सर्वांगसुन्दर रूप में प्रकाशित करने की व्यवस्था की, यह वास्तव

में प्रशंसनीय है। श्री डाक्टरसाहब संस्कृत और भारतीय संस्कृति की सेवा इसी प्रकार सदा करते रहें, यही हमारी कामना है।

अन्त में इन शब्दों के साथ अपने निवेदन को समाप्त करना चाहूँगा कि नित्यकर्म जैसे शास्त्रीय विषय को सर्वजनोपयोगी रूप देने में सुविधा की दृष्टि से अथवा अपनी अल्पज्ञता के कारण पुस्तक में यत्र तत्र कुछ त्रुटियाँ रह गई हों तो विज्ञगुणग्राहक जन उन्हें बताने की कृपा करें, ताकि भविष्य में उन्हें सुधारा जा सके।

पुस्तक की पाण्डुलिपि के लेखन आदि विविध कार्यों में मेरे ज्येष्ठ पुत्र चि० रविशर्मा, एम० ए० एवं पुत्रवधू सौ० ललिता, एम. ए. ने पूरा पूरा हाथ बटाकर अपने कर्त्तव्य का पालन किया है, तदर्थ उन्हें हमारा आशीर्वाद है कि वे चिरायु हों। अन्त में मैं श्री आनन्दप्रकाशजी सिंघल प्रोप्राइटर, कालिन्दी प्रिण्टर्स (रजि०) के सहयोग के लिए भी आभारी हूँ।

नववर्ष प्रतिपदा, सं० २०२७
संस्कृत कार्यक्रम-अधिकारी
आकाशवाणी–नई दिल्ली।

निवेदक:
भवानी शङ्कर त्रिवेदी



श्रीगणेशाय नमः

अथ नित्यकर्मप्रकाशः

तत्रादौ मंगलाचरणम्

गणेशं शारदामम्बां नत्वेशं श्रीगुरुं हरिम्।
नियकर्मप्रकाशाख्यं ग्रन्थं प्रस्तौमि शोभनम्॥१॥
एकोऽयनाय यः पन्थाः वैदिकः सत्सुसेवितः।
तत्र प्रवृत्तिमाधातुं कृतो यत्नेन संग्रहः॥२॥
गुरुर्ब्रह्मागुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥३॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥४॥
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥५॥

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता,
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता,
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा।।

जो कुन्द के फूल, चन्द्रमा, बर्फ और हार के समान श्वेत हैं जो शुभ्र कपड़े पहनती हैं, जिनके हाथ उत्तम वीणा से सुशोभित हैं, श्वेत कमलासन पर बैठती हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देव जिनकी सदा स्तुति करते हैं और जो सब प्रकार की जड़ता हर लेती हैं, वे भगवती सरस्वती मेरी रक्षा करें।

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं,
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।
हस्ते स्फाटिकमालिकां च दधतीं पद्मासने संस्थितां,
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्।।

जिनका रूप श्वेत है, जो ब्रह्म विचार की परम तत्त्व हैं, जो सब संसार में फैल रही हैं, जो हाथों में वीणा और पुस्तक धारण किये रहती हैं, अभय देती हैं, अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करती हैं, हाथ में स्फटिकमालिका धारण करती हैं और बुद्धि देने वाली हैं, उन आद्या परमेश्वरी भगवती सरस्वती की मैं वन्दना करता हूँ।

द्वितीय-अंशु

इसकी प्रसन्नता दिनभर रहेगी

प्रातः इतना तो करें

विषय-सूची

प्रथम-अंशु

अपने बारे में
इतना तो जानें

ॐ

नित्यकर्म-प्रकाश

हिन्दूधर्म-विशेषताएँ

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं नो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः।।

शैव लोग 'शिव' नाम से, वेदान्ती 'ब्रह्म' नाम से, बौद्ध 'बुद्ध' नाम से, प्रमाणपटु नैयायिक 'जगत्कर्ता' कह कर, जैन 'अर्हन्' कह कर, और मीमांसक 'कर्म' कह कर जिसकी उपासना करते हैं, वह त्रिलोकी के नाथ हरि हमारा मनोरथ पूरा करें।

हिन्दू धर्म आचार-प्रधान है। सदाचार और पवित्रता इसकी प्रमुख विशेषता है। मन-वचन-कर्म से सदा पवित्र बने रहने का हमारे यहाँ सदा ध्यान रखा जाता है। हिन्दूधर्म की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। उनमें से एक बड़ी विशेषता यह है कि दूसरे धर्मों की भांति यह किसी मनुष्य (चाहे वह ईश्वर का पुत्र हो या ईश्वर का दूत अथवा अवतार) के द्वारा प्रवर्तित नहीं है। हिन्दू-धर्म अनादि है। इसीलिए इसे नित्य या 'सनातन-धर्म' कहते हैं। हमारे ऋषि, मुनि और रामकृष्ण आदि अवतार इस सनातन धर्म के संरक्षक व सिद्धान्तों के प्रवक्ता हैं, प्रवर्तक नहीं। इसीलिए यह धर्म इतना व्यापक है कि विश्व के सभी धर्मों के श्रेष्ठ तत्त्वों का इसमें समावेश हो जाता है। हिन्दू-धर्म को यदि सभी धर्मो का सार कह दें तो कोई अत्युक्ति न होगी।

यही कारण है कि हजारों वर्षों से यह धर्म अपने स्वरूप को सुरक्षित रखे हुए है।

हिन्दू-संस्कृतिरूपी सुर-सरिता की धारा युग-युगान्तरों से अखण्ड रूप से प्रवाहित हो रही है।

हिन्दू शब्द

हिन्दू धर्म और उसकी विशेषताओं की चर्चा के प्रसंग में हमारा ध्यान 'हिन्दू' शब्द की ओर जाना स्वाभाविक है। कालिका पुराण के एक श्लोक में कहा गया है कि जब बली कलि (युग) ने सबको आच्छन्न कर लिया तथा धरती यवनों से आक्रान्त हो गई तो हिन्दू विन्ध्याचल (दक्षिण) की ओर चले गए—

बलिना कलिनाच्छन्ने धर्मे कवलिते कलौ।
यवनैरवनी क्रान्ता हिन्दवो विन्ध्यमाविशन्।।

वृद्ध-स्मृति में लिखा है कि—

हिंसया दूयते यश्च सदाचरणतत्परः।
वेदगौप्रतिमासेवी स हिन्दुमुखशब्दभाक्।।

जो हिंसा से दुःख माननेवाला सदाचरण में तत्पर वेद, गौ और मूर्ति का पूजक है वह हिन्दू है।

'पारिजातहरण' में कहा गया है कि जो अपने तप से पापों को और शस्त्रों से शत्रुओं का संहार, करता है वह हिन्दू है।

हिनस्ति तपसा पापान् दैहिकान् दुष्टमानसान्।
हेतिभिः शत्रुवर्गं च स हिन्दुरभिधीयते।।
हिनस्ति तपसा पापं दैहिकं मानसं तथा।
दुनोति शस्त्रैः शत्रूंश्च स हिन्दुरिति कथ्यते।।

इसी प्रकार बृहस्पति आगम में 'हिन्दुस्तान' के सम्बन्ध में लिखा है कि—

हिमालयं समारभ्य यावदिन्दुसरोवरम्।
तं देवनिर्मितं देशं हिन्दुस्थानं प्रचक्षते॥

हिमालय से लेकर इन्दुसरोवर–हिन्द महासागर तक के प्रदेश का नाम हिन्दुस्थान है। मेरु-तंत्र में भी 'हिन्दु' का उल्लेख हुआ। 'हिन्दुस्थान' को वेदों में 'सप्त-सिन्धु' के नाम से स्मरण किया गया है। पंजाब की ५ नदियाँ और गंगा यमुना का प्रदेश ही 'संप्त-सिन्धु' है। इन सातों के साथ कुछ अन्य नदियों की चर्चा ऋग्वेद में हुई है। जैसे कि–

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति
शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिकन्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये
शृणुह्या सुषोमया।

ऋग्वेद १०/७५/५

हे गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री (शतलुज), परुष्णी (रावी) मरुद्वृधा (कश्मीर के कष्टबार की मरुद्वान-मरुद्वणी नदी जो चनाब में मिलती है) वितस्ता (झेलम), असिक्नी (चनाब), आर्जीकीया (व्यास) और सुषोमा (अटक जिले की सिन्धु की सहायक नदी) तुम मेरे स्तोत्र को सुनो। इसी प्रकार–

'सप्त क्षरन्ति सिन्धवः'[१]

आदि में अनेकत्र 'सप्त-सिन्धु' या 'सिन्धु' का उल्लेख हुआ है। भाषाविज्ञान की दृष्टि में 'स' 'ह' में परिवर्तित हो जाता है। तदनुसार वैदिक 'सिन्धु' और 'हिन्दु' एक ही है, लगभग ढाई हजार

१. पुराणों में सिन्धु गंगा यमुना और सरस्वती के साथ नर्मदा गोदावरी और कावेरी दक्षिणा की इन तीन नदियों को मिलाकर 'सप्त सिन्धु' की स्तुति की गई है:–

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

वर्ष पूर्व के ईरानी सम्राट् द्वारा (प्राचीन रूप दारयबहु संस्कृत-धारयद्-वसु) के लेखों में भी 'हिन्द' और 'हिन्दु' शब्द आया है।

यह 'हिन्दू' ही यूनानिया के द्वारा इण्डस या इण्डोस बना दिया गया और वही आगे चलकर इण्डिया या इण्डिका बन गया। इस प्रकार हिन्दू– 'हिन्द' या इण्डिया आज सारे में विश्व विख्यात है।[१]

भारत-महिमा

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः॥

विष्णुपुराण के इस श्लोक में भारत का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि समुद्र (हिन्दमहासागर) के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में जो देश है, वही भारतवर्ष है और उसके निवासी ही भारतीय हैं।

भारत शब्द की व्युत्पत्ति देते हुए मत्स्यपुराण में लिखा है कि प्रजा का भरण करने के कारण मनु को भरत करते हैं और भरत का देश ही भारत कहलाता है।

---

१. देश के नामकरण की दूसरी धारा ऋग्वेदीय 'सिन्धु' शब्द है। ऋग्वेद में सिन्धु उस महान् नद की संज्ञा है जो उत्तर-पश्चिमी भारत के भूगोल की सबसे बड़ी विशेषता है। सिन्धु के इस पार का पंचनद या वाहीक प्रदेश तो भारतवर्ष की सीमा के अन्तर्गत था ही, सिन्धु के पार का वह कांठा भी जहाँ का पानी ढलकर सिन्धु में आता है और जिससे कुभा (काबुल), सुवास्तु (स्वात), गोरी (पंजकोरा) गोमती (गोमल), क्रमु (कुर्रम) आदि नदियाँ हैं, सदैव, भारतीय भूगोल का अंग माना जाता था। गंधार (तक्षशिला से काबुल तक का प्रदेश), कपिश (हिन्दुकुश का प्रदेश, मध्य अफगानिस्तान), कम्बोज (पामीरबदख्शाँ) आदि अनेक भौगोलिक नाम भरत की देन हैं और उन देशों की प्राचीन संस्कृति भी भारतीय ही थी। भारतवर्ष का जो सबसे प्राचीन साहित्य है, उसकी पृष्ठभूमि में कम्बोज, बाल्हीक, कपिश, गंधार, ये निश्चित बिन्दु हैं, जिनसे भारतीय हलचलों के तार मिले हुए पाए जाते हैं।

—वासुदेवशरण अग्रवाल

प्रजानां भरणाच्चैव मनुर्भरत उच्यते।
निरुक्तवचनैश्चैव वर्षं तद् भारतं स्मृतम्।।

मत्स्य. ११४/५

वेदों में अग्नि को 'भरत' कहा गया है, 'भरतो वै अग्निः (शतपथ ब्राह्मण)। इस प्रकार यज्ञाग्नि, मनु, योगी भरत और दौष्यन्ति भरत इन सबके कारण हमारे देश का नाम भारत है।

पहले भारत पश्चिम में वाल्हीक (ईरान, फ़ारस के बलख) तक था। पर वहाँ के निवासी ब्राह्मण के अदर्शन और क्रियाओं व संस्कारों के लोप के कारण धीरे-धीरे म्लेच्छ हो गए। मनुस्मृति में स्पष्ट लिखा है कि–

शनकैस्तु क्रियालोपादिमा क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च।।
पौण्ड्रकाश्चौलद्रविडाः काम्बोजाः यवनाः शकाः।
पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः।।

इस भारतभूमि की महिमा गाते हुए विष्णु-पुराण में कहा गया है कि वे लोग धन्य हैं, जो भारतभूमि में जन्म लेते हैं, क्योंकि यह भारतभूमि स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करने वाली है। इसीलिए देवता भी भारत में मनुष्य-जन्म लेना चाहते हैं।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गस्थितिहेतुभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।

विष्णुपुराण २/३/२४

भारत की एक विशेषता यह बताई गई है कि भारत ही एकमात्र कर्म-भूमि है जब कि दूसरी सब भोग-भूमियाँ हैं। कहा गया है कि–

तत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।
यतो कि कर्मभूरेषा ततोऽन्या भोगभूमयः।।

हिन्दू-धर्म की शाखा-प्रशाखाएँ—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्याद् ऋजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

शि० म० स्तो०

सारांश यह है कि हे भगवन् जैसे नदियों का पानी सीधे मार्ग से आए या टेढ़े से वह समुद्र में ही पहुँचेगा वैसे ही सभी लोग, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के मानने वाले क्यों न हों, किसी भी प्रकार की उपासना पद्धति से उपासना क्यों न करते हों, वे सब तुम्हारी ही उपासना कर रहे हैं, और वे सब तुम्हारी ही प्राप्ति के प्रयत्न में लगे हुए हैं।

इस प्रकार जिस धर्म में उपासना की नाना पद्धतियाँ आरंभ से ही स्वीकृत रही हों वह हिन्दू-धर्म रूपी अक्षयवट सृष्टि के आरंभ से लेकर आज तक अपनी अनेक शाखा उपशाखाओं में पल्लवित हो रहा है। नित्य नई फूटने वाली इस धर्म की ये शाखोपशाखाएँ इसकी महती जीवनीशक्ति की ही परिचायिकाएँ हैं। आज जैन, बौद्ध और सिक्ख सम्प्रदाय आदि अनेक रूप में हिन्दू-धर्म ही फल-फूल और फैल रहा है।

इस प्रकार शास्त्रों में ठीक ही कहा गया है कि सब धर्मों का मूल वेद है।

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनाम् आत्मनस्तुष्टिरेव च॥

इसके अतिरिक्त कुछ और भी तत्त्व ऐसे हैं, जिनके आधार पर विभिन्न हिन्दू-धर्मानुयायियों में एकता के दर्शन किये जा सकते हैं। जैसे कि—(१) हिन्दू-धर्म की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वह आत्मा की नित्यता अतएव परलोक, जन्मान्तर और मोक्ष में विश्वास रखता है। (२) हिन्दू धर्मानुयायी (शिशु और संन्यासी जैसे कुछ

अपवादों को छोड़कर) मृतकों का दाह-संस्कार करते हैं। (३) गौ के प्रति पूज्य भावना का हिन्दू-धर्म में प्रमुख स्थान है और ॐ हिन्दूओं का सर्वमान्य मंत्र है–

ओंकारमूलमन्त्राढ्यः प्रेतदाहक्रियाकरः।
पुनर्जन्मनि विश्वासी गोभक्तो हिन्दुरुच्यते॥

वह व्यक्ति अपने को हिन्दू कहलाने का अधिकारी माना जा सकता है, जो पुनर्जन्मवाद, गौ के प्रति पूज्य भावना और मृतकों के दाह-संस्कार और ॐ की उपासना–इन चार तत्त्वों को सिद्धान्त रूप में स्वीकार करता है।

हिन्दू-धर्म उस खरबूजे की भाँति है जो ऊपरी धारियों के कारण कई विभागों में विभक्त दिखाई देता है, पर अन्दर से वह एक और अखण्ड होता है। विचार-स्वातन्त्र्य और नाना उपासना-पद्धतियों को मान्यता देने के कारण सैकड़ों हजारों छोटे-मोटे सम्प्रदायों को अपने विराट् रूप में समेटे आ रहा है– यह धर्म।

सनातनधर्म के प्रमुख तत्त्व

जैसा कि अब तक के विवेचन से स्पष्ट है हिन्दू धर्म अपनी अनेक शाखा-प्रशाखाओं में फल-फूल और फैल रहा है। पर इस सबके साथ साथ अपने मूलरूप में भी यह धर्म अनादि काल से चला आ रहा है। हिन्दू-धर्म ही सनातनधर्म है। सनातन धर्म शब्द का अर्थ ही नित्य अनादि और अनन्त है। इस सनातन धर्म की विशेषता है कि–

श्रौतस्मार्त या वैदिक परम्परा पर आधारित होने के कारण यह वर्णाश्रम-व्यवस्था का उपासक है और इसीलिये यह धर्म मर्यादावाद का पोषक है।

हिन्दू-धर्म के पूर्वोक्त चार सामान्य तत्त्व–पुनर्जन्म, मृतकदाह, ओंकारोपासना और गोभक्ति का समावेश भी इसी एक मुख्य विशेषता में हो जाता है।

पञ्चगकार

'गंगा गीता च गायत्री गावो गणपतिरेव च।'

ये 'पाँच गकार' भी हिन्दू धर्म के प्रतीक हैं। जीवन में कम से कम एक बार गंगास्नान करने की और मरणोपरान्त भी अपनी अस्थियाँ गंगा में प्रवाहित किये जाने की कामना प्रत्येक हिन्दू के हृदय में रहती है।

१. प्रत्येक पवित्रकार्य में गंगाजल का प्रयोग आवश्यक माना जाता है। गंगा के प्रति आस्था हमारी नसों में समायी हुई है।

२. गायत्री यहाँ वेद का उपलक्षण है। गायत्री और तन्मूलक वेद और वेदों के मूल ॐ में सनातन धर्म का सार है।

३. गीता हिन्दुओं का एक सर्वमान्य ग्रन्थ है। इसका तत्त्वज्ञान आज विश्व के कोने में मुखरित हो रहा है। गीता के गायक गोविन्द तो हमारे आराध्य हैं ही।

४. गौ को प्रत्येक हिन्दू माता मानता है। प्रमुख संस्कार तथा आन्तरिक और बाह्य शुद्धि के लिये पञ्चगव्य (जिसमें गौ के दूध दही और घी के साथ गौमूत्र एवं गोमय भी मिला रहता है) का भक्षण आवश्यक ठहराया गया है। ऐसी है– गौमाता के प्रति हमारी निष्ठा।

५. गणेश हिन्दुओं के सर्वप्रथम देवता हैं। प्रत्येक कार्य के आरम्भ में और कुछ नहीं तो कुंकुम या रोली से स्वस्तिक बनाकर उसी रूप में या सुपारी पर मौली लपेट कर गणेश जी की पूजा कर लेते हैं। तभी हमारे शुभकार्य शुरू हो सकते हैं।

इस प्रकार ये पाँचों गकार–गौ, गंगा, गणेश, गीता और गायत्री सनातन धर्म के परम उपास्य हैं।

हिन्दू-धर्म की मौलिक विशेषताओं के प्रसंग में ये दस बातें भी स्मरणीय हैं–

१. सृष्टि की उत्पत्ति का रहस्य और कल्प-गणना, शिखासूत्र, देवपितृपूजा, परलोकवाद लोकलोकान्तर, नाम–महात्म्य, सदाचार शौचाचार और नारी के सतीत्व की महिमा व तुलसी अश्वत्थ आदि का महत्त्व।

संस्कृत भाषा
जिसके सहारे हिन्दूधर्म जीवित है

संस्कृत हिन्दू धर्म का एक प्रमुखतम तत्त्व है। संस्कृत वह संयोजक कड़ी है, जिसने दक्षिण की कन्याकुमारी को उत्तर के गौरीशंकर के साथ और अतीत को वर्तमान के साथ एक सूत्र में आबद्ध कर रखा है। हिन्दू-धर्म की समग्र मौलिक चिंतनधारा संस्कृत के माध्यम से अथवा संस्कृत में प्रतिपादित तत्त्वज्ञान के आधार पर ही प्रवाहित हुई है। संस्कृत को हटा दिया जाये तो भारत और भारत धर्म समाप्त हो जायेगा। विश्व के समक्ष हिन्दुओं की श्रेष्ठता को प्रमाणित करने का सम्पूर्ण श्रेय संस्कृत को ही है। संस्कृत भाषा के वेद, पुराण और कालिदास के काव्य नाटकों का आलोक यदि यूरोप में न पहुँचता तो आज विश्व में हिन्दू-धर्म की यह प्रतिष्ठा न हो पाती।

इस संस्कृत भाषा को बड़े परिश्रम के साथ युगयुगान्तर से हमने सुरक्षित रखा है। आज भी हम अपने समग्र धर्मकार्य, शुभ कर्म और विवाह आदि संस्कार संस्कृत भाषा के माध्यम से सम्पन्न करते कराते हैं। संस्कृत के किसी मंत्र या श्लोक को पढ़ने पढ़ाने में किस प्रकार एक दैविक आनन्द की प्राप्ति होती है, यह प्रत्यक्ष अनुभव की वस्तु है। इसीलिये हमारे यहां मूल मंत्रों के पाठ पर बार-बार बल दिया गया है। यह बात दूसरी है कि संस्कृत मंत्रों के साथ अर्थज्ञान भी हो तो उसका फल अधिक हो जाएगा।

यहाँ यह बात भी याद रख लेनी चाहिये कि संस्कृत कोई कठिन भाषा नहीं है। केवल आधा घंटा प्रतिदिन पढ़कर मनुष्य एक, दो मास में ही संस्कृत का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

संस्कृत उत्तरभारत की हिन्दी, पंजाबी, काश्मीरी, गुजराती, राजस्थानी, मराठी, बंगला, उड़िया, आसामी आदि सभी आधुनिक भाषाओं

की जननी तो है ही, दक्षिण भारत की तमिल, तेलगू, कन्नड़ और मलयालम आदि भाषाएं भी पचास प्रतिशत से लेकर अस्सी प्रतिशत तक संस्कृत पदावलि से समृद्ध हैं।

युरोप के भाषाशास्त्री पहले यह मानते रहे कि युरोप की ग्रीक और लेटिन तथा उनसे विकसित अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, आदि सभी आधुनिक यूरोपियन भाषाएं हिन्दी आदि के समान ही सीधी संस्कृत से निकली हैं। आज इस मत में कुछ परिवर्तन हो गया है, फिर भी इस तथ्य को कोई अस्वीकार नहीं करता कि संस्कृत का यूरोपियन भाषाओं से भी उतना ही निकट का सम्बन्ध है। मैक्समूलर ने तो यहाँ तक लिखा है कि अंग्रेजी आदि यूरोपियन भाषाएं बंगला से भी अधिक संस्कृत के निकट हैं।

संस्कृत-ज्ञान के बिना कोई भी हिन्दू अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान ही नहीं सकता।

यदि आप संस्कृत जानते हैं तो यह परम सौभाग्य की बात है और नहीं तो आज से ही अधिक नहीं तो केवल आधा घण्टा संस्कृत के लिए दीजिए। इस प्रकार केवल दो तीन महीने में आप काम चलाऊ संस्कृत सीख जायेंगे। और तब संस्कृत के श्लोकों और मंत्रों को पढ़ते सुनते आप अनुभव करेंगे कि आप में एक नई संजीवनी शक्ति का संचार हो रहा है। अमेरिका के महान् विचारक थेरो ने ठीक ही कहा है कि--

'हिन्दुओं के ग्रंथों के एक एक वाक्य को पढ़कर मुझे दैवी आनन्द की अनुभूति होती है।' इसी प्रकार फ्रांसीसी इतिहासज्ञ मिचेल ने लिखा है कि संस्कृत साहित्य (रामायण) एक ऐसा गहरा प्याला है, जिससे दीर्घकाल तक जीवन व यौवन का रस मिल सकता है।

हिन्दू-धर्म के आधार ग्रंथ
वेद-वेदांग आदि

यस्य निश्वसितं वेदा यो वेदभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

परा और अपरा इन दोनों प्रकार की विद्याओं के एक मात्र आधार जिस परब्रह्म परमात्मदेव के वेद निश्वास हैं और जिसने वेदों से सारे विश्व-प्रपञ्च की सृष्टि की है, उस महेश्वर-परमेश्वर की मैं वन्दना करता हूँ।

अब तक के विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दु-धर्म का आधार वेद और वेदानुयायी, स्मृतियाँ अथवा धर्म-शास्त्र हैं। श्रुति भी वेद का ही नाम है, इसीलिए वैदिक या सनातनधर्म को 'श्रौतस्मार्तधर्म' और वेद-प्रतिपादित कर्मकाण्ड को 'श्रौतस्मार्त कर्म' भी कहते हैं।

'नित्य', 'नैमित्तिक' और 'काम्य' इन तीनों प्रकार के कर्मों का मूल भी स्वभावतः वेद और स्मृति या धर्मग्रन्थ ही हैं। इसीलिए इन तीनों प्रकार के कर्मों के प्रसंग में वेद आदि धर्मग्रन्थों का सामन्य परिचय प्रत्येक हिन्दू को होना ही चाहिये।

वेद शब्द का अर्थ है, ज्ञान। दूसरे शब्दों में ईश्वरीय ज्ञान का नाम ही वेद है। सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा जी के हृदय में प्रकट हुए वेद परब्रह्म परमात्मदेव के निश्वास हैं। सृष्टि के आदि में ब्रह्माजी ने उन निश्वासों को सुना और ब्रह्माजी से प्रजापतियों ने सुना, इसी क्रम से वह ज्ञान चलता रहा। क्योंकि वेद श्रवण-परम्परा से ही चले आ रहे हैं, या यूं कहें कि वेद परम्परा से सुने ही जाते हैं, उन का कोई निर्माता नहीं इसीलिए उनको 'श्रुति' कहा

गया है। आज भी शब्दमार्गी योगी कानों को बन्द करके अनाहत नाद सुनते हैं। यह अनाहत नाद अव्यक्त 'प्रणव' ध्वनि है।

इसका स्पष्ट अर्थ है कि प्रणवनाद (अनाहत ध्वनि) में प्रकाण्ड संयम-दीर्घकालीन संयम-से अंतर में श्रुति का श्रवण शक्य है। यद्यपि मनुष्य के लिये इतना दीर्घकालीन तप और विशाल संयम सम्भव नहीं। ब्रह्माजी को भी सहस्त्रों वर्षों के तप के पश्चात् ही हृदय में श्रुति का श्रवण प्राप्त हुआ था।

मूलतः वेद अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान एक ही है। उसमें कोई भेद नहीं है। वेद का दूसरा नाम 'त्रयी' भी है। इसका अर्थ यह है कि वेद में कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड--ये तीन बाते हैं। अथवा पद्य [ऋक्] गद्य [यजुष्] और संगीत [साम] इन तीन रूपों में वह ईश्वरीय ज्ञान-वेद-व्यक्त हुआ है।

वेदों का चार भागों में विभाजन यज्ञों में उनके चार प्रकार के उपयोग के हेतु किया गया है। ऋग्वेद से होता, यजुर्वेद से अध्वर्यु, सामवेद से उद्गाता और अथर्ववेद से ब्रह्मा, यज्ञ में अपने अपने कर्म का सम्पादन करते हैं।[१]

इससे स्पष्ट है कि एक ही वेद या 'ईश्वरीय ज्ञान' गद्यपद्य और संगीत इन तीन रूपों में व्यक्त होने के कारण तथा ज्ञान, कर्म और उपासना-इन तीनों का प्रतिपादक होने के कारण 'त्रयी' कहलाता है और यज्ञों में चतुर्विध उपयोग के कारण वह चार भागों में विभक्त है।

---

१. **ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्तरीषु।**
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां विममीत उ त्वः।
अर्थात् एक(होता) यज्ञ में ऋचाओं का पाठ करता है और उद्गाता शक्वरी (साममन्त्रों) का गान करता है। इसी प्रकार ब्रह्मा यथासमय मंत्रार्थ प्रक्रिया आदि बताता है और अध्वर्यु यज्ञ की मात्रा या स्वरूप का निरूपण करता है। इस प्रकार इस मंत्र में चारों वेदों के स्वतंत्र अस्तित्व और यज्ञीय कार्यों में उनके प्रयोग का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

मंत्र और ब्राह्मण इन दोनों का ही नाम वेद है। वेदों के मंत्रभाग को संहिता भी कहते हैं, जिनका उच्चारण करके किये हुए जप, होम, पूजन आदि देवताओं की प्रीति के सम्पादक बनते हैं, वे मंत्र हैं–

'द्रव्यदेवतास्मारको हि मंत्रः'

(शतपथ)

ऋग्वेद–

जिस वेद में ऋचाएँ गायत्री आदि छंदों के रूप में हैं और जिनसे होतृकर्म सम्पादित होता है, वह ऋग्वेद है।

ऋग्वेद दस मण्डल या आठ अष्टकों में विभक्त है। प्रत्येक मण्डल या अष्टक में कई कई सूक्त एवं प्रत्येक सूक्त में बहुत सी ऋचाएं या मन्त्र हैं। इसमें कुल १०२८ सूक्त हैं।

ऋग्वेद के मंत्रों में अधिकतर देवताओं की स्तुतियाँ, तथा सृष्टि-क्रम का विशद और रहस्यमय वर्णन है। इसके पृथ्वीसूक्त में पृथ्वी और राष्ट्र की महिमा बड़े ही भव्य रूप में गाई गई है। शाकल्य एक ऋषि थे, जो ऋग्वेदसंहिता के पद-पाठ के प्रवर्त्तक कहे जाते हैं अर्थात् उन्होंने संधियां तोड़ तोड़ कर अलग अलग पदों को स्मरण रखने की परम्परा चलाई। पहले सब वेदों के मंत्र संधियुक्त या संहित अवस्था में थे, इसीलिए उन्हें 'संहिता' भी कहते हैं। आजकल ऋग्वेद की शाकल शाखा ही प्रकाशित मिलती है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद की वाष्कल शाखा भी उपलब्ध है। वाष्कल ऋषि क्रम-पाठ के प्रवर्त्तक हैं। पदपाठ से पदों या शब्दों की ठीक ठीक विवेचना की रक्षा और क्रमपाठ से मंत्रों के ठीक क्रम की रक्षा अभिप्रेत हैं। ऋग्वेद की कुल २१ शाखाएं थीं।

यजुर्वेद–

यजुर्वेद में यज्ञ-सम्बन्धी मंत्रों का प्राधान्य है। यजुर्वेद के दो प्रकार के पाठ हैं–१. शुक्ल यजुर्वेद २. कृष्ण यजुर्वेद।

शुक्ल यजुर्वेद की माध्यंदिन और काण्व तथा कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, मैत्रायणी और कठ आदि पांच शाखाएँ मिलती हैं– शुक्ल यजुर्वेद की १५ और कृष्ण यजुर्वेद की ८६। इस प्रकार यजुर्वेद की कुल शाखाएं १०१ थीं। शुक्ल यजुर्वेद में ४० अध्याय और १९७५ कण्डिकाएँ ३९८८ मंत्र हैं। यजुर्वेद का ४०वां अध्याय ही 'ईशावास्य' या ईश उपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है।

सामवेद–

साम का अर्थ है, गेय मंत्र। यज्ञों में इन मंत्रों का गान किया जाता है। इसके अधिकांश मन्त्र ऋग्वेद में मिलते हैं।

इसकी १. कौथुमी, २. जैमिनिया, ३. राणायनिया– ये तीन शाखाएँ मिलती हैं। सामवेद पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक–इन दो भागों में विभक्त है।

अथर्ववेद–

इसकी शौनकीय और पैपलाद–ये दो शाखाएं शुद्ध रूप में मिलती हैं। इसमें राजनीति, आयुर्वेद, विज्ञान तथा सृष्टिविद्या और मंत्र-तंत्र राज्याभिषेक, पौरोहित्य, शान्तिकर्म, पुष्टिकर्म आदि अनेक विषयों का प्रतिपादन हुआ है।

अथर्ववेद में २० काण्ड ७६० सूक्त और ६००० मंत्र हैं। अथर्ववेद को ब्रह्मवेद भी कहते हैं क्योंकि यज्ञ में ब्रह्मा अथर्ववेद के द्वारा अपना कार्य सम्पादित करता है।

ब्राह्मण ग्रंथ–

ब्राह्मण ग्रंथों में वेद-मंत्रों तथा पदों की व्याख्या के साथ यज्ञों में वेद-मंत्रों का कैसे उपयोग हो आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का प्रतिपादन हुआ है। प्रत्येक वेद के अलग अलग ब्राह्मण हैं।

ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण और शांखायन अथवा कौशीतकी–ये दो ब्राह्मण ग्रंथ मिलते हैं। कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तरीय ब्राह्मण तथा शतपथ

ब्राह्मण। सामवेद के ताण्ड्य आदि १० ब्राह्मण तथा अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण उपलब्ध है।

आरण्यक और उपनिषद्–

सब प्रकार के सांसारिक विषयोपभोगों का त्याग कर प्राचीन ऋषि मुनि निर्जन शान्त अरण्य में रहते थे। ब्रह्मविद्या का अध्ययन कर परमात्म-चर्चा करते थे। अरण्य या वनों में अनुभूत या व्यक्त गम्भीर आध्यात्मिक चिंतन या ब्राह्मण ग्रंथों के वन में पढ़ने और मनन करने योग्य भाग का नाम ही आरण्यक है। आरण्यक ग्रंथों में ही उपनिषदों का समावेश हो जाता है।

यूं तो २०५ के लगभग उपनिषद् मिलते हैं पर उनमें से १ ईश, २ केन, ३ कठ, ४ मुण्डक, ५ माण्डूक्य, ६ प्रश्न, ७ ऐतरेय, ८ तैत्तरीय, ९ छान्दोग्य, १० बृहादारण्यक और श्वेताश्वतर ये ११ बहुत प्रसिद्ध हैं।

सूत्र ग्रंथ–

हमारा सम्पूर्ण कर्मकाण्ड या यज्ञादि प्रक्रिया का निर्देशन सूत्र-ग्रंथों के आधार पर ही चलता है। सूत्र-ग्रन्थ ३ प्रकार के हैं-१. श्रौतसूत्र २. गृह्यसूत्र एवं ३. धर्मसूत्र।

श्रौत सूत्रों में यज्ञादि वैदिक कर्मकाण्ड, गृह्य सूत्रों में विवाहादि संस्कार, वर्णाश्रम धर्म तथा श्राद्ध आदि नित्य नैमित्तिक कर्मों का तथा धर्मसूत्रों में धर्माचार का मुख्य रूप से वर्णन है। उत्तर भारत के अधिकतर निवासी शुक्ल यजुर्वेदीय हैं, उनके सब संस्कार और कार्य पारस्कर गृह्य सूत्र और कात्यायन श्रौत सूत्रों के आधार पर चलते हैं। यूं चारों ही वेदों के अनेक सूत्र ग्रंथ उपलब्ध हैं। कात्यायन भी पारस्कर का ही नाम है।

'प्रातिशाख्य' और 'अनुक्रमणी'–

ये एक प्रकार के वैदिक व्याकरण हैं। कात्यायन शुल्वसूत्र में ज्यामिति-शास्त्र का विस्तार है।

अनुक्रमणी के द्वारा भी वेद की रक्षा और वेदार्थ के विवेचन में बहुत बड़ी सहायता मिलती है। इनसे मंत्रों के छंद, देवता और ऋषि का पर्याय-क्रम से ज्ञान होता है। 'अनुवाकानुक्रमणी' और 'सर्वानुक्रमणी' ये दो अनुक्रमणियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

वेदांग–

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं नेत्रं निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।

१. शिक्षा २. कल्प ३. व्याकरण ४. निरुक्त ५. छन्द और ६. ज्योतिष–ये छः वेद के अंग हैं।

१. शिक्षा–

ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत और उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा स्थान व प्रयत्नों के साथ वेद-मंत्रों के स्वर, अक्षर और मात्रा आदि के शुद्ध उच्चारण की शिक्षा दी जाती है। आजकल उपलब्ध शिक्षाओं में पाणिनीय शिक्षा तथा याज्ञवल्क्य शिक्षा बहुत प्रसिद्ध हैं।

२. कल्प–

सूत्रग्रंथों का ही दूसरा नाम कल्प है।

३. व्याकरण–

भाषा के नियम स्थिर करता है। शिक्षा में वर्णों या अक्षरों और व्याकरण में शब्दों और पदों का विवेचन रहता है। पाणिनी की अष्टाध्यायी व्याकरण का प्रामाणिक ग्रंथ है।

४. निरुक्त–

वेदमंत्रों की व्याख्या-पद्धति बताते हैं। आजकल केवल यास्क का ही निरुक्त मिलता है।

५. छन्द–

छन्द में पद्य-रचना शैली का वर्णन रहता है।

६. ज्योतिष–

ज्योतिष का मुख्य प्रयोजन यज्ञ तथा संस्कारों के लिए मुहूर्त आदि बताना है। इसमें नक्षत्र और ग्रहों की गतियों से संहिता, होरा एवं गणित आदि द्वारा पृथक्-पृथक् काल का निर्देश किया जाता है। सूर्य चन्द्र आदि ग्रहों और नक्षत्रों की गति और विभिन्न स्थितियों से ही समय और ऋतुओं में परिवर्तन होता है और समय ही प्रत्येक पदार्थ की पुष्टि एवं परिवर्तन का प्रधान कारण है। इसलिये जैसे समय में कार्य किया जायेगा वैसा ही फल ही होगा। यदि संस्कार और यज्ञ आदि उत्तम समय देखकर किये जायेंगे तो उनका फल ठीक होगा। यदि ज्योतिष की सहायता न लेकर और बिना शुभाशुभ समय (मुहूर्त) का विचार किये ही कर्म किये जायें तो उनके निष्फल होने की सम्भावना बनी ही रहेगी।

उपवेद–

इन चारों वेदों में प्रत्येक का एक एक उपवेद है। 'आयुर्वेद' ऋग्वेद का उपवेद है। इसमें रोगों की पहचान, उनकी उत्पत्ति का कारण, चिकित्सा आदि का वर्णन है। इसको जानकर तदनुकूल आचरण करने से मनुष्य का स्वास्थ्य उत्तम रहता है और आयु बढ़ती है। इसीलिये यह आयुर्वेद कहा जाता है। इसमें आकृति अर्थात् शरीर रचना (अनाटमी' तथा 'फिजियालजी') और ओषध एवं चिकित्सा ('थैराप्यूटिक्स' तथा 'मेडिसीन') दोनों आ जाते हैं। धनुर्वेद यजुर्वेद का उपवेद है। इसमें युद्ध-सम्बन्धी सभी बातों का वर्णन है। अनेक अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण की विधि, उनके चलाने के उपाय, अनेक प्रकार की व्यूहरचनाएं आदि विषय इसमें विस्तार के साथ बतलाये गये हैं। प्राचीन काल में शस्त्रास्त्रों में धनुष मुख्य था, इसीलिये उसके नाम पर इस उपवेद का नाम 'धनुर्वेद' है। 'गान्धर्ववेद' सामवेद का

उपवेद है। इसमे उदात्त, अनुदात्त आदि भेद से और वीणा तथा कण्ठ से निकलने वाले षड्ज, ऋषभ आदि सात स्वरों से ताल के साथ गाने की विधि बतलायी गयी है।

पुराण–

ऋग्यजुःसामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः।
इतिहास-पुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते॥

ऋक्, यजुः, साम, अथर्व नाम के चार वेद कहे गये हैं। इतिहास-पुराण पञ्चम वेद कहा जाता है।

हिन्दुओं के धार्मिक तथा तदतिरिक्त साहित्य में पुराणों का एक विशेष स्थान है। वेदों के बाद इन्हीं की मान्यता है। महाभारत के साथ-साथ इन्हें पञ्चम वेद कहा गया है। इनका बाह्यरूप और अन्तःस्वरूप प्रायः रामायण, महाभारत और स्मृतियों के समान ही है। पुराण प्राचीन एवं मध्यकालीन हिन्दुत्व के धार्मिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, वैयक्तिक, सामाजिक और राजनीतिक संस्कृति के लोकसम्मत विश्वकोष ही हैं।

पुराण की साहित्यिक परिभाषा अमरकोश तथा कुछ पुराणों में की गयी है और उसके पाँच लक्षण बतलाये गये हैं–

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (लय और पुनः सृष्टि), वंश (देवताओं की वंशावली), मन्वन्तर (मनु के काल-विभाग) और वंशानुचरित (राजाओं के वंश-वर्णन)–पुराण के ये पाँच लक्षण हैं।

पुराणों में १८ महापुराण और १८ उपपुराण गिने जाते हैं। महापुराणों की नामावली का क्रम सभी पुराणों में प्रायः एकसा ही है। इसमें केवल दो-एक परिवर्तनों को छोड़ एकरूपता ही है। नामावली यह है– ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, वराह, लिंग, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड।

निम्नलिखित श्लोक में पुराणें की पूरी नामावली है–

भद्वयं मद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
नालिंपाग्निपुराणनि कूस्कं गारुडमेव च।।

आदि अक्षर 'भ' वाले २, 'म' वाले २, 'ब्र' वाले ३, 'व' वाले ४, 'ना' वाला १, 'लिं' वाला १, 'प' वाला १. फिर अग्निपुराण १, 'कू' वाला १, 'स्क' वाला १, और गरुड़पुराण १ इस प्रकार कुल अठारह पुराण होते हैं।

अठारह विद्याएँ–

विष्णु पुराण में ये १८ विद्याएँ बताई हैं–

४ वेद, ६ वेदांग, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण ये १४ विद्याएं है। आयुर्वेद, धनुर्वेद गन्धर्ववेद और अर्थशास्त्र– इन चारों के योग से १८ विद्याएं हो जाती हैं।

स्मृतियाँ–

याज्ञवल्क्य, मनु, बृहस्पति, दक्ष, गौतम, यम, अंगिरा, पराशर, विष्णु, शंख, लिखित, देवल, कात्यायन, हरीत, अत्रि, उशना, आपस्तम्ब, वसिष्ठ, नारद और व्यास–ये बीस प्रमुख स्मतियाँ हमारे धर्मशास्त्रों में प्रामाण्य मानी जाती है।

मंत्रों के ऋषि, देवता और छन्द

ओंकार को ही प्रणव कहते हैं और उसे सब वेदों का सार एवं सब मंत्रों का राजा मानते हैं। ऐसा लिखा गया है कि तीनों वेदों के मथने के क्रमशः भूः, भुवः, स्वः निकले और इन तीनों के क्रम से अ, उ, म् तीन अक्षर निकले जिनसे ओंकार बना है। इसीलिये प्रत्येक मंत्र के बोलने से पहले प्रणव बोला जाता है। स्वस्ति आदि कह कर दान लेने के समय भी 'ॐ स्वस्ति' कहने की रीति है।

अकारश्चाप्युकारश्च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भुवः स्वरितेति च॥

मनु० २/७६

ऋषि

समाधि द्वारा एकाग्रचित्त से जिन जिन ऋषियों ने जिन जिन मंत्रार्थों का साक्षात्कार किया या देखा कि यह मंत्र ऐसा है अथवा जिस मंत्र की उपासना, अनुष्ठान आदि द्वारा जिस ऋषि को सिद्धि प्राप्त हुई, वही उस मंत्र का ऋषि कहा जाता है। ऋषि शब्द का अर्थ है ज्ञानी और वेद-मंत्रार्थों का द्रष्टा (प्रत्यक्ष करने वाला)।

'यज्ञेन वाचः पदवीयमापन्'

ऋग्वेद १०/७१/१३

प्रत्येक मंत्र का कोई न कोई छंद है। वैदिक छन्दो का विवेचन पिंगल सूत्र में किया गया है।

देवता--

जिस मंत्र में जिसका प्रतिपादन या निरूपण रहता है या जिसकी स्तुति आदि की जाती है वही उसका देवता कहा जाता है। मंत्र का प्रतिपादक ही ऋषि है और प्रतिपाद्य ही देवता।

विनियोग–

प्रत्येक मंत्र का जप, होम आदि में प्रयोग का कोई न कोई प्रयोजन है। विनियोग का यही तात्पर्य है कि कौन मंत्र किस कर्म में प्रयुक्त होता है।

इससे स्पष्ट है कि ऋषि आदि के ज्ञान की कितनी आवश्यकता है?

शाखा, गोत्र और प्रवर–

नित्य नैमित्तिक और काम्य सभी प्रकार के कर्मों के प्रारम्भ में संकल्प करना होता है। इस संकल्प में कर्मकर्ता को वर्ष तिथि वार नक्षत्र और कर्म के उद्देश्य के साथ-साथ अपने नाम, गोत्र, शाखा और प्रवर का भी स्मरण करना होता है। इसलिए शाखा, गोत्र और प्रवर के बारे में भी कुछ आवश्यक बातें जान लेनी चाहिएँ।

शाखा--

वैदिक वाङ् मय इतना विस्तृत है कि कोई व्यक्ति अपने जीवन-काल में इसको साङ्गोपाङ्ग अध्ययन नहीं कर सकता और यह भी कि प्रत्येक शाखा अपने आप में परिपूर्ण है, अतः अपनी अपनी शाखाओं का साङ्गापाङ्ग अध्ययनाध्यापन अनिवार्य बताया गया है और इस प्रकार सब वेद उन उन परम्पराओं में सुरक्षित रहे हैं। उत्तर भारत में अधि कांश यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा के अध्ययनाध्यापन की परम्परा रही है।

जो जो ऋषि जिस जिस शाखा का प्रवक्ता है, उसी के नाम पर वेद की वह शाखा प्रसिद्ध हो गई। जैसे माध्यन्दिन शाखा कहते हैं। इसी प्रकार अन्य शाखाएँ भी कहलाती हैं।

गोत्र–

सम्पूर्ण प्रजा, सृष्टि के आदि में उत्पन्न होने वाले प्रजापतियों और ऋषियों की मानससन्तति है। जो-जो जिन जिन ऋषियों की संतान हैं, वे ऋषि ४० हैं। कहने का भाव यह है कि हमारे अधिक से अधिक चालीस गोत्र हैं। इनमें से सात तो सप्त ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हैं, और शेष तैंतीस भी प्रसिद्ध ऋषि हैं।

सप्त ऋषि–

जमदग्निर्भरद्वाजो विश्वामित्रात्रिगौतमाः।
वशिष्ठकाश्यपागस्त्या मुनयो गोत्रकारिणः।।

इनमें से पहले सात को ही सप्तर्षि कहते हैं। उक्त आठ और इनके सन्तान मुनिगण गोत्र-प्रवर्तक हैं। वे ये हैं:–

एतेषां यान्यपत्यानि तानि गोत्राणि मन्वते।
सौकालीनकमौद्गत्यौ पराशरबृहस्पती।।
कांचनो विष्णुकोशिक्यौ कात्यायनात्रेयकाण्वकाः।
कृष्णात्रेयः सांकृतिश्च कौण्डिन्यो गर्गसंज्ञकः।
आंगिरस इति ख्यातोऽनावृकारन्य संज्ञितः।
अन्यो जैमिनिवृद्धाख्यो शाण्डिल्यो वात्स्य एव च।
सावर्ण्यालम्बायनवैयाघ्रपादाश्च घृतकौशिकः।
शक्तिः काण्वायनश्चैव वासुकी गौत्तमस्तथा।
शुनकः सौपायनश्चैव मुनयो गोत्रकारिणः।

जमदग्नि, भरद्वाज, विश्वामित्र, अत्रि, गौतम, वशिष्ठ कश्यप, अगस्त्य, सौकालीन, मौद्गल्य, पराशर; बृहस्पति, कांचन, विष्णु, कौशिक्य, कात्यायन, आत्रेय, काण्व, कृष्णात्रेय, सांकृति, कौण्डिन्य, गर्ग, आंगिरस, जैमिनिवृद्ध शाण्डिल्य, वत्स्य, सावर्णी, लम्बायन, वैयाघ्रपाद, कौशिक, शक्ति, काण्वायन, वासुकी, शुनक, और सौपायन ये गोत्र-प्रवर्तक मुनि हैं।

प्रवर–

वेद की शाखा और गोत्र के साथ हमें अपने प्रवर का भी स्मरण करना होता है।

'प्रवरो गोत्रप्रवर्तकमुनिव्यावर्तको मुनिगणः'

अपने गोत्र प्रवर्तक मुनि के साथ उस गोत्र में मान्य या प्रवर कुछ मुनियों का विशेष रूप से स्मरण किया जाता है, इसे ही प्रवर कहते हैं। कुछ गोत्र पञ्च प्रवर हैं (उनमें पाँच ऋषियों की विशेष प्रतिष्ठा है) जैसे सौकालीन तथा वत्स, काण्व और सौपायन आदि कुछ गोत्र पञ्चप्रवर और शेष सब त्रिप्रवर हैं।

यज्ञोपवीत की पाँच या तीन ग्रन्थियाँ इस बात की सूचक होती हैं कि कौन पञ्चप्रवर है व कौन त्रिप्रवर आदि। पञ्चप्रवर वालों के यज्ञोपवीत में पाँच ग्रन्थियां और त्रिप्रवर वालों के यज्ञोपवीत में तीन ग्रन्थियाँ रहती हैं।

निर्णयसिन्धु, गोत्रप्रवरनिर्णय, प्रवरमञ्जरी आदि ग्रन्थों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि सहस्त्रार्बुद–हज़ारोंलाखों गोत्र हैं। हरिश्चन्द्र-रोहित उपाख्यान के अनुसार महर्षि विश्वामित्र ने सौ पुत्रों के रहते हुए भी शरणागत शुन:शेप की प्राण-रक्षा कर उसे अपना दत्तक-पुत्र बना लिया तो उनके बड़े पचास पुत्रों ने उसे अपना भाई मानने से इन्कार कर दिया, इस पर विश्वामित्रजी ने अपने उन पचास पुत्रों को शाप दे दिया कि जाओ म्लेच्छ हो जाओ। निश्चित ही विश्वामित्र के उन पचास पुत्रों के गोत्र भी भारत के बाहर के आर्यदेशों में–यूरोप मध्य एशिया आदि जिन्हें म्लेच्छ देश कहा जाने लगा था– प्रचलित रहे होंगे। ऐसे ही कई अप्रसिद्ध गोत्र हमारे यहाँ भी प्रचलित हैं। उनमें से कुछ नाम तो ऐसे हैं, जो सुनने में बड़े अटपटे लगते हैं, पर वे गोत्रकार ऋषियों के ही नाम हैं।

इतने सारे गोत्रों में से ४९ प्रख्यात गोत्र माने गए हैं, और उनमें से ४० बहु प्रख्यात हैं। यहाँ यह भी ध्यान रहे कि समान

नाम वाले भी गोत्रकार ऋषि कई हो गए हैं, पर उनके गण प्रवर आदि भिन्न हैं।

उक्त पद्यबद्ध गोत्र नामावलि में परिगणित नामों के अतिरिक्त--गोभिल, भार्गव, याज्ञवल्क्य, पुलस्त्य, कोशल शौनक, देवरात, सिंहल और धनञ्जय आदि कुछ अन्य गोत्र भी बहु-प्रख्यात हैं। इसी प्रकार अधिकतर गोत्र तो त्रिप्रवर ही हैं, कुछ थोड़े से पञ्चप्रवर भी हैं, पर एक प्रवर के गोत्र भी पाये जाते हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि अपनी परम्परा में जो गोत्र प्रवर आदि प्रचलित हैं, तदनुकूल ही बर्तना चाहिए।

नामगोत्र आदि का उल्लेख उक्त ग्रन्थों में तथा शतपथ ब्राह्मण के वंशब्राह्मण में हुआ है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि सन्ध्या आदि नित्य कृत्यों के सम्पादन करते समय संकल्प में नाम-गोत्र-प्रवर आदि का स्मरण क्यों किया जाता है और प्रत्येक मंत्र के पाठ के पूर्व उस मंत्र के ऋषि-देवता-छन्द और विनियोग आदि के स्मरण और उच्चारण का क्या लाभ और महत्व है? ये सब बाते भली-भाँति जान लेने पर नित्य-कर्म श्रद्धापूर्वक सविधि सम्पन्न करने में हमारी श्रद्धा दृढ़ हो जाती है।

नित्य, नैमित्तिक और काम्य-कर्म

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का सम्पादन हमारे जीवन का परम लक्ष्य है। इस 'चतुर्वर्ग' में धर्म का स्थान सर्व प्रमुख है। हमारे यहाँ धर्म की सर्वमान्य परिभाषा यह बताई गई है:–

'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः।'

जिससे इस लोक में अभ्युदय और आगे निःश्रेयस् अर्थात् परम कल्याण या मोक्ष की प्राप्ति हो, वही धर्म है। धर्माचरण के लिये हमारे यहाँ कुछ नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्मों का विधान किया गया है। स्नान सन्ध्या, जप, होम, देवार्चन अतिथि-सत्कार आदि प्रतिदिन किये जाने वाले कर्मों को नित्यकर्म कहते हैं।

सन्ध्या स्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवञ्च षट्कर्माणि दिने दिने।।

नैमित्तिक का अर्थ है जो नित्य न किया जाकर किसी प्रायश्चित्तादि निमित्त (कारण) के आ जाने पर किया जाय, वह नैमित्तिक कर्म कहलाता है। ये निमित्त देश काल आदि अनेक प्रकार के हो सकते हैं। जैसे–नवरात्रि में दुर्गापूजा, पितृपक्ष में श्राद्ध, दीपावली पर लक्ष्मी-पूजा, अथवा अमावस्या, संक्रान्ति, पूर्णमासी आदि पर्वों पर व्रत, कथा, दान, आदि जो विशेष शुभकार्य किये जाते हैं, इसी प्रकार चन्द्रग्रहण के समय काशी हरिद्वार और सूर्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों में अथवा सोमवती अमावस्या आदि पर्वों पर गंगा, यमुना आदि निकटवर्ती पवित्र नदियों में स्नान आदि जो पुण्य कार्य किये जाते हैं वे नैमित्तिक

कर्म कहलाते हैं। इसी प्रकार सप्ताह-श्रवण, सत्यनारायण कथा, वापी, कूप, तड़ाग, मन्दिर, धर्मशाला और पाठशाला आदि का निर्माण भी नैमित्तिक कर्म ही हैं। यदि ये शुभ कर्म किसी विशेष प्रकार के फल की कामना से किये जाएं तो वे काम्य कर्म कहलाएंगे। जैसे रोगनिवारण व आयुष्य-वृद्धि आदि के लिए महामृत्युञ्जय का जप, संतान-प्राप्ति के लिए संतानगोपाल तथा देवीभागवत आदि का पाठ और अनिष्ट-निवृत्ति एवं सर्वविध कल्याण की कामना से दुर्गासप्तशती का पाठ तथा हवन व रुद्राभिषेक, गायत्री-पुरश्चरण शतचण्डी, सहस्रचण्डी अथवा महारुद्रयाग, विष्णुयाग अथवा वेदपारायण आदि जो यज्ञानुष्ठान, पूजा-पाठ, जप, दान होते हैं, वे काम्य-कर्म कहलाते हैं।

सूतक आदि में कर्मत्याग–

किसी कुल में बालक के उत्पन्न होने अथवा किसी की मृत्यु हो जाने पर अशौच सूतक में नित्य नैमित्तिक कर्म नहीं किये जाते हैं।

यह आशौच जन्म या मृत्यु के बाद दस दिन तक माना जाता है। इन दिनों में प्रायः कोई भी शुभ कार्य नहीं किया जाता। किन्तु विवाह आदि शुभ कार्य में गणेश स्थापना, नान्दीमुख श्राद्ध आदि के बाद अशौच आ जाए तो उसे दोष नहीं माना जाता। और वे कार्य यथासमय सम्पन्न कर दिये जाते हैं।

सामान्यतया अशौच की निवृत्ति वाले दिन स्नानादि के बाद नया यज्ञोपवीत धारण किया जाता है, और घड़ा आदि मिट्टी के बरतन भी नये लगा दिये जाते हैं। नवजात शिशु की माता को उसी दिन गंगाजल, तुलसी-दल, पञ्चगव्य पिलाया जाता है और नैमित्तिक हवन आदि सम्पन्न किये जाते हैं। इस प्रकार शुद्धि के बाद ग्यारहवें दिन से फिर नित्य नैमित्तिक आदि कार्य यथा पूर्व सम्पन्न किए जाएँ। जैसा कि भगवान मनु ने कहा है:–

उभयत्र दशाहनि कुलस्यान्नं न भुज्यते।
दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते।।

इसी प्रकार जाबालि का भी कथन है:-

सन्ध्यां पञ्चमहायज्ञान् नैत्यिकं स्मृतिकर्म च।
तन्मध्ये हापयेत्तेषां दशाहान्ते पुनः क्रिया।।

इसी प्रकार यदि अपने ग्राम या पास पड़ोस में किसी की मृत्यु हो जाय तो जब तक मृतक हो दाहसंस्कार के लिए ले जाया नहीं जाता तब तक अन्न या जल ग्रहण नहीं करना चाहिए। जैसा कि कहा है:-

ग्राममध्ये मृतः कश्चिन्नरो नारी चतुष्पदः।
न कुर्यादन्नपानं च मृतं यावन्न नीयते।।

इस प्रकार संक्षेप में १. हिन्दु-धर्म के स्वरूप और उसकी विशेषताएँ, २. हिन्दू-धर्म के आधार ग्रन्थ और ३. नित्यकर्मोपयोगी ज्ञातव्य बातों को जान लेने के बाद श्रद्धा और विश्वास के साथ शारीरिक व मानसिक पवित्रतापूर्वक नित्य-कर्म में प्रवृत्त रहने से इहलौकिक सुख को प्राप्त किया जा सकता है और अंत में परम-पद की प्राप्ति होती है।

प्रातः कृत्य

ब्राह्ममुहूर्त में उठना–

भगवान् मनु अपनी मनुस्मृति में कहते हैं–

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च।।

अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि वह प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में उठ जाए और इस पवित्र वेला में धर्म-अर्थ और कायक्लेश तथा उनके कारण और वेदों के तत्त्वार्थ का चिन्तन करे स्वास्थ्य की दृष्टि से ब्राह्म मुहूर्त में उठने और प्रभु के स्मरण की बात आयुर्वेदशास्त्र में भी कही गई है।

भावप्रकाश में लिखा है कि–

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।
तत्र दुःखस्य शान्त्यर्थं स्मरेद्धि मधुसूदनम्।।

स्वस्थ व्यक्ति को चाहिए कि यदि वह अपनी आयु (जीवन) की रक्षा करना चाहता है तो ब्राह्ममुहूर्त में उठ जाए और आनेवाले दुःख तथा कष्टों के निवारण के लिए भगवान् का स्मरण करे।

तदनुसार आज भी कोटि-कोटि हिन्दू नर-नारी प्रातः उठ कर नित्यकर्म में लग जाते हैं। क्योंकि सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सोते रहना हमारे यहाँ महापाप माना गया है।

कहा है कि–

प्रातः कृत्य

ब्राह्ममुहूर्त में उठना–

भगवान् मनु अपनी मनुस्मृति में कहते हैं–

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च।।

अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि वह प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में उठ जाए और इस पवित्र वेला में धर्म-अर्थ और कायक्लेश तथा उनके कारण और वेदों के तत्त्वार्थ का चिन्तन करे स्वास्थ्य की दृष्टि से ब्राह्म मुहूर्त में उठने और प्रभु के स्मरण की बात आयुर्वेदशास्त्र में भी कही गई है।

भावप्रकाश में लिखा है कि–

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।
तत्र दुःखस्य शान्त्यर्थं स्मरेद्धि मधुसूदनम्।।

स्वस्थ व्यक्ति को चाहिए कि यदि वह अपनी आयु (जीवन) की रक्षा करना चाहता है तो ब्राह्ममुहूर्त में उठ जाए और आनेवाले दुःख तथा कष्टों के निवारण के लिए भगवान् का स्मरण करे।

तदनुसार आज भी कोटि-कोटि हिन्दू नर-नारी प्रातः उठ कर नित्यकर्म में लग जाते हैं। क्योंकि सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सोते रहना हमारे यहाँ महापाप माना गया है।

कहा है कि–

प्रातः कृत्य

ब्राह्ममुहूर्त में उठना–

भगवान् मनु अपनी मनुस्मृति में कहते हैं–

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च।।

अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि वह प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में उठ जाए और इस पवित्र वेला में धर्म-अर्थ और कायक्लेश तथा उनके कारण और वेदों के तत्त्वार्थ का चिन्तन करे स्वास्थ्य की दृष्टि से ब्राह्म मुहूर्त में उठने और प्रभु के स्मरण की बात आयुर्वेदशास्त्र में भी कही गई है।

भावप्रकाश में लिखा है कि–

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।
तत्र दुःखस्य शान्त्यर्थं स्मरेद्धि मधुसूदनम्।।

स्वस्थ व्यक्ति को चाहिए कि यदि वह अपनी आयु (जीवन) की रक्षा करना चाहता है तो ब्राह्ममुहूर्त में उठ जाए और आनेवाले दुःख तथा कष्टों के निवारण के लिए भगवान् का स्मरण करे।

तदनुसार आज भी कोटि-कोटि हिन्दू नर-नारी प्रातः उठ कर नित्यकर्म में लग जाते हैं। क्योंकि सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सोते रहना हमारे यहाँ महापाप माना गया है।

कहा है कि–

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं
बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणञ्च।
सूर्योदये चास्तमिते शयानम्
विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः।।

अर्थात् जो मैले कपड़े पहनता है, जिसके दांत मैले रहते हैं, जो बहुत अधिक खाता है, जो कठोर वचन बोलता है, और जो सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय सोया रहता है, वह चाहे साक्षात् विष्णु ही क्यों न हो लक्ष्मी उसका परित्याग कर देती है।

प्रातःकाल उठते ही सर्वप्रथम नासिका के दाएं या बाएं जिस छिद्र से श्वास आ रहा हो उसी हाथ से मुख और आँखें मसल कर निम्न मंत्र बोलते हुए अपने करतल (दोनों हथेलियों) को देखें–

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम्।।

हथेली के अग्रभाग में लक्ष्मी, बीच में सरस्वती और मूल में ब्रह्मा जी का निवास है। अतः प्रातःकाल सर्वप्रथम अपनी हथेलियों को देखना चाहिए। फिर दर्पण में अपना मुख देखे। इसके बाद विद्वान् ब्राह्मण तथा ऐसे भाग्यवान् पुण्यशील व्यक्तियों या पदार्थों का दर्शन करें, जिससे सारा दिन आनन्दपूर्वक बीते।

पृथ्वी की प्रार्थना–

बिस्तर छोड़ने के बाद भूमि पर पैर धरने से पहले धरती माता से प्रार्थना और क्षमा याचना कर ले। उस समय यह मंत्र पढ़े–

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।।

हे समुद्ररूपी वस्त्रों से आवृत, अपने पर्वत रूपी स्तनों से प्रवाहित हो वाले अमृतमय पय से सबका पोषण करने वाली धरती माता भगवा विष्णु ही आपके पति हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मेरे पाद-स्पर्श को क्षमा कीजिए।

'नाविष्णु: पृथिवीपति:' इस कथन के अनुसार पृथिवी के भगवान् विष्णु ही एक मात्र पति हैं। भगवान् विष्णु के सिवाय और कोई पृथ्वी पति नहीं हो सकता। इसलिए हमें सर्वप्रथम इस मंत्र में याद दिलाया गया है कि हम अपने जीवन में भगवान् के सिवाय और किसी को पृथ्वी का पति न मानें।

उष:पान–

तब तीन बार कुल्ले करके मुख-शुद्धि कर ले और हाथ मुँह धोकर रात को ताम्बे के बर्तन में रखे कपड़े से छने और ढके बासी पानी को पेट भर पी ले। आयुर्वेदशास्त्र में इस जल को 'हंसोदक' कहा गया है। इस प्रकार नित्य उष:पान करने से कब्ज़ आदि रोग नहीं रहते और शरीर स्वस्थ रहता है।

प्रात:स्मरण–

प्रात:स्मरण के इन श्लोकों का मधुर लय और उच्च स्वर के साथ पाठ करते समय एक दिव्य आनन्द की अनुभूति होती है। इन श्लोकों का पाठ प्रात: चलते-फिरते भी किया जा सकता है।

और तब अपने इष्टदेव प्रभु के नाना रूपों और नामों का स्मरण करे।

हे जिह्वे रससारज्ञे सर्वदा मधुरप्रिये।
नारायणाख्यपीयूषं पिब जिह्वे निरन्तरम्।।

रस के सार को पहचानने वाली सदा मधुरप्रिय हे मेरी जिह्वा तुम श्रीहरि नाम रूपी अमृत का सदा पान करती रहो।

गणेश वन्दना–

प्रात: स्मरामि गणनाथमनाथबन्धुं
सिन्दुरपूरपरिशोभितगण्डयुग्मम्।
उद्दण्डविघ्नपरिखण्डनचण्डदण्ड–
माखण्डलादिसुरनायकवृन्दवन्द्यम्।।१।।

जो इन्द्र आदि देवेश्वरों के समूह से वन्दनीय हैं, अनाथों के बन्धु हैं, जिनके युगल कपोल सिन्दूर राशि से अनुरंजित हैं, जो उद्दण्ड [प्रबल] विघ्नों का खण्डन करने के लिए प्रचण्ड दण्डस्वरूप हैं, उन श्रीगणेश जी का मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ।

प्रातर्नमामि चतुराननवन्द्यमान-
मिच्छानुकूलमखिलं च वरं ददानम्।
तं तुन्दिलं द्विरसनाधिपयज्ञसूत्रं
पुत्रं विलासचतुरं शिवयोः शिवाय॥२॥

जो ब्रह्माजी से भी वन्दनीय हैं, अपने भक्त को उसकी इच्छा के अनुकूल पूर्ण वरदान देने वाले हैं तुन्दिल हैं, तथा सर्प ही जिनका यज्ञोपवीत है, उन क्रीडाकुशल शिव-पार्वती के पुत्र (श्रीगणेशजी) को मैं कल्याण-प्राप्ति के लिये प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ॥२॥

प्रातर्भजाम्यभयदं खलु भक्तशोक-
दावानलं गणविभुं वरकुञ्जरास्यम्।
अज्ञानकाननविनाशनहव्यवाह-
मुत्साहवर्धनमहं सुतमीश्वरस्य॥३॥

जो अपने जनको अभय प्रदान करने वाले हैं, भक्तो के शोकरूप वन के लिये दावानल (वनाग्नि) हैं, गणों के नायक हैं, जिनका सुन्दर मुख हाथी के समान है और जो अज्ञानरूप वन को नष्ट करने (जलाने) के लिये अग्नि हैं, उन उत्साह बढ़ाने वाले शिवसुत (श्रीगणेशजी) को मैं प्रातःकाल भजता हूँ॥३॥

परब्रह्म-स्मरण–

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
सच्चित् सुखं परमहंसगतिं तुरीयम्।
यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिमवैति नित्यं
तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः॥१॥

मैं प्रातः काल हृदय में स्फुरित होते हुए आत्मतत्त्व का स्मरण करता हूँ, जो सत्, चित् और आनन्दरूप है, परमहंसों का प्राप्ति-स्थान है और जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओं से विलक्षण है, जो स्वप्न, सुषुप्ति और जाग्रत्-अवस्था को नित्य जनता है, वह स्फुरणरहित ब्रह्म ही मैं हूँ, पञ्चभूतों का संघात (शरीर) मैं नहीं हूँ॥१॥

प्रातर्भजामि मनसा वचसामगम्यं
वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण।
यन्नेतिनेतिवचनैर्निगमा अवोचं
तं देवदेवमजमच्युन्माहुरग्र्यम्॥२॥

जो मन और वाणी से अगम्य है, जिसकी कृपा से समस्त वाणी भास रही है, जिसका शास्त्र 'नेति-नेति' कहकर निरूपण करते हैं, जिस अजन्मा देवदेवेश्वर अच्युत का अग्र्य (आदि) पुरुष कहते हैं, मैं उसका प्रातःकाल भजन करता हूँ॥२॥

प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं
पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम्।
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्त्तौ
रज्ज्वां भुजङ्गम इव प्रतिभासितं वै।।३।।

जिस सर्वस्वरूप परमेश्वर में यह समस्त संसार रज्जु में सर्प के समान प्रतिभासित हो रहा है, उस अज्ञान से सर्वथा पर रहने वाले, दिव्यतेजोमय, पूर्ण सनातन पुरुषोत्तम को मैं प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ॥३॥

शिव-वन्दना–

प्रातः स्मरामि भवतीतिहरं सुरेशं
गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम्।
खट्वांगशूलवदाभयहस्तमीशं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम्॥१॥

जो सांसारिक भय को हरने वाले और देवताओं के स्वामी हैं, जो गंगाजी को धारण करते हैं, जिनका वृषभवाहन है, जो अम्बिका के ईश हैं तथा जिनके एक हाथ में खट्वांग और दूसरे में त्रिशूल हैं और जिनका तीसरा हाथ 'वर' तथा चौथा हाथ 'अभय' की मुद्रा में है। उन संसार-रोग के हरने के निमित्त अद्वितीय औषधरूप 'ईश' (भगवान् शंकर) का मैं प्रातः समय स्मरण करता हूँ॥१॥

प्रातर्नमामि गिरिशं गिरिजार्द्धदेहं
सर्गस्थितिप्रलयकारणमादिदेवम्।
विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोभिरामं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम्॥२॥

भगवती पार्वती जिनका आधा अंग हैं, जो संसार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कारण हैं, आदिदेव हैं, विश्वविजयी और मनोहर हैं, सांसारिक रोग को नष्ट करने के लिये अद्वितीय औषधरूप उन गिरिश (भगवान् शिव) को मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ॥२॥

प्रातर्नमामि शिवमेकमनन्तमाद्यं
वेदान्तवेद्यमनघं पुरुषं महान्तम्।
नामादिभेदरहितं षडभावशून्यं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम्॥३॥

जो अन्त से रहित आदिदेव हैं, वेदान्त से जानने योग्य, पापरहित एवं महान् पुरुष हैं तथा जो नाम आदि भेदों से रहित, छः अभावों से शून्य, संसार-रोग को हरने के निमित्त अद्वितीय औषध हैं, उन एक भगवान् शंकर को मैं प्रातःकाल भजता हूँ॥३॥

नारायण-वन्दना—

प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिशान्त्यै
नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभम्।
ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुं
चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम्॥१॥

गरुड़वाहन, कमलनाभ, ग्राहसे ग्रसित गजेन्द्र की मुक्ति के कारण, सुदर्शनचक्रधारी, नवविकसित कमलदल से नेत्रवाले नारायण का भवभयरूपी महान् दु:ख की शान्ति के लिये, मैं प्रात:काल स्मरण करता हूँ॥१॥

प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना
पादारविन्दयुगलं परमस्य पुंसः।
नारायणस्य नरकार्णवतारणस्य
पारायणप्रवणविप्रपरायणस्य॥२॥

वेदों का स्वाध्याय करने वाले विप्रों के परम आश्रय, नरकरूप संसार समुद्र से तारनेवाले, उस परमपुरुष के चरणारविन्द-युगल में सिर झुकाकर मैं मन-वचन से प्रात:काल नमस्कार करता हूँ॥२॥

प्रातर्भजामि भजतामभयंकरं तं
प्राक्सर्वजन्मकृतपापभयापहन्त्यै।
यो ग्राहवक्त्रपतितांघ्रिगजेन्द्रघोर-
शोकप्रणाशमकरोद्धृतशंखचक्रः॥३॥

जिसने शंख-चक्र धारण करके ग्राह के मुख में पड़े हुए चरणवाले गजेन्द्र के घोर संकट का नाश किया, भक्तों को अभय करने वाले उन भगवान् विष्णु को मैं अपने पूर्वजन्मों के सब पापों का नाश करने के लिए प्रात:काल भजता हूँ॥३॥

देवी-स्तुति-

प्रातः स्मरामि शरदिन्दुकरोज्ज्वलाभां
सद्रत्नवन्मकरकुण्डलहारशोभाम्।
दिव्यायुधर्जितसुनीलसहस्त्रहस्तां
रक्तोत्पलाभचरणां भवतीं परेशाम्॥१॥

चन्द्रमा की सी कान्ति वाली रत्नों के कुण्डल और हार से भूषित दिव्यायुध युक्त सहस्र हाथों वाली लाल कमल से चरणों वाली भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ॥१॥

प्रातर्नमामि महिषासुरचण्डमुण्ड
शुम्भासुरप्रमुखदैत्यविनाशदक्षाम्।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुनिमोहनशीललीलां
चण्डीं समस्तसुरमूर्तिमनेकरूपाम्॥२॥

महिषासुर, चण्ड, मुण्ड आदि दैत्यों का संहार करने वाली अपनी लीला से ब्रह्मा, शिव, इन्द्रादि देवों व मुनियों को भी मोहित करने वाली सर्वदेवस्वरूपिणी भगवती को मैं नमन करता हूँ॥२॥

प्रातर्भजामि भजतामभिलाषदात्रीं
धात्रीं समस्तजगतां दुरितापहन्त्रीम्।
संसारबन्धनविमोचनहेतुभूतां
मायां परां समधिगम्य परस्य विष्णोः॥३॥

भक्तों की अभिलाषा को पूर्ण करने वाली समग्र संसार की रक्षक, पापविनाशिनी, मुक्तिदायिनी, भगवान् विष्णु की मायास्वरूपिणी भगवती को मैं नमस्कार करता हूँ॥३॥

दशावतार वन्दना—

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान्मूर्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

मत्स्यावतार धारणकर वेदों का उद्धार करने वाले कूर्मरूप धारणकर पृथ्वी को धारण करने वाले, वाराह रूप धरकर हिरण्याक्ष दैत्य से पृथ्वी का उद्धार करने वाले, नृसिंह रूप धरकर हिरण्यकशिपु का नाश करने वाले, वामन रूप धरकर महाराज बलि की दान-महिमा को बढ़ाने वाले, भगवान् परशुराम का रूप धर कर दुष्ट आततायी-शासकों

का नाश करने वाले, राम रूप धारण कर रावण पर विजय प्राप्त करने वाले, बलराम रूप धर कर हल धारण करने वाले, बुद्ध रूप के द्वारा संसार में करुण का प्रचार करने वाले, कल्की रूप धर म्लेच्छों का नाश करने वाले, दशावतारधारी हे भगवान् श्रीकृष्ण मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

इस प्रकार पृथ्वी माता, गणेश, परब्रह्म भगवान् शङ्कर, विष्णु तथा भगवती का स्मरण करते हुए आगे दिए गए श्लोकों के द्वारा उस परब्रह्म की नाना विभूतियों तथा स्वरूपों के स्मरण करने की परम्परा है। इसमें अधिकतर नाम ही हैं, और अर्थ सरल हैं अतः अर्थ नहीं दिया जा रहा है, केवल श्लोक मात्र दिए जा रहे हैं।

प्रातःस्मरण के कुछ और श्लोक

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी
भानुःशशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।

भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराश्च
मनुः पुलस्त्यः पुलहश्च गौतमः।
रेभ्यो मरीचिश्च्यवनश्च दक्षः
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।

सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः
सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलौ च।
सप्तस्वराः सप्तरसातलानि
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।

सप्तार्णवाः सप्तकुलाचलाश्च
सप्तर्षयो द्वीपवनानि सप्त।
भूरादिकृत्वा भुवनानि सप्त
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।

पृथ्वीः सगन्धा सरसास्तथापः
स्पर्शी च वायुर्ज्वलितं च तेजः।
नभः सशब्दं महता सहैव
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।

इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं
पठेत्स्मरेद्वा शृणुयाच्च तद्वत्।
दुःस्वप्ननाशस्त्विह सुप्रभातं
भवेच्च नित्यं भगवत्प्रसादात्।।

पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः।
पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः।।

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः।।

सप्तैतान्संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम्।
जीवेद्वर्षशतं सोऽपि सर्वव्याधिविवर्जितः।।

अहल्या द्रौपदी सीता तारा मन्दोदरी तथा।
पञ्चकं च स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्।।

अविमुक्तचरणयुगलं दक्षिणमूर्त्तेश्च कुक्कटचतुष्कम्।
स्मरणं वाराणस्याः निहन्ति दुःस्वप्नमशकुनञ्च।।

उमा उषा च वैदेही रमा गङ्गेति पञ्चकम्।
प्रातरेव स्मरेन्नित्यं सौभाग्यं वर्धते सदा।।

स्वस्तिः प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीपाः।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु।।

गुरुजनों को प्रणाम करना–

इस प्रकार प्रार्थना करने के बाद घर में उपस्थित माता-पिता, गुरु, सास, श्वसुर आदि गुरुजनों को प्रणाम करें। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि–

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्।।

शौचस्नान आदि–

आज भी लाखों करोड़ों हिन्दू सर्दी हो या गर्मी सदा प्रातःकाल ही नदी तालाब आदि पर बने हुए देवालय आदि धार्मिक स्थानों पर जाकर वहीं शुद्ध वातावरण में स्नान, सन्ध्या आदि नित्यकर्म सम्पादित करते हैं। हमारी यह एक बहुत ही अच्छी परम्परा है। हमारे यहाँ स्नान के लिए नदी के बहते हुए जल को सर्वोत्तम, तालाब को मध्यम तथा कुएँ आदि के जल को सामान्य माना गया है।

ततोऽपि सारसं पुण्यं ततो नादेयमुच्यते।
तीर्थतोयं ततः पुण्यं गङ्गातोयं ततोऽधिकम्।।

इस प्रकार नदी आदि पर जाने से प्रातःकाल की शुद्ध वायु का सेवन भी हो जाता है और दिन भर शरीर में स्फूर्ति बनी रहती है। इसी प्रकार शौच के बाद मिट्टी से हाथ धोने की परम्परा भी सभी दृष्टियों से अत्यन्त श्रेष्ठ है।

मलमूत्र त्याग के समय मौन रहने और यज्ञोपवीत को दाएँ कान पर चढ़ा लेना तथा बाद में मिट्टी से हाथ धोकर शुद्धि कर लेना परम आवश्यक है। तदनन्तर नीम, बबूल, खैर आदि की दातुन करनी चाहिए। दातुन के हरे छिलके में पर्णहरित (क्लोरोफ़िल) नामक तत्त्व रहता है, जो दांतों व मसूढ़ों के लिए बहुत लाभदायक है। दातुन के बाद तैलाभ्यंग (सरसों के तेल से मालिश) करने का विधान है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि–

अभ्यंगं कारयेन्नित्यं सर्वेष्वंगेषु पुष्टिदम्।
सार्षपं गन्धतैलं च यत्तैलं पुष्पवासितम्।।

तैलाभ्यंग के बाद यथाशक्ति व्यायाम का विधान है।

नित्य-स्नान

स्नान करते समय हमारे यहाँ पहले हाथ-पाँव धोने की प्रथा है। उस समय संकल्प और इस प्रकार तीर्थ प्रार्थना की जाय–

पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा।
स्नानकाले पवित्राणि आगच्छन्तु सदा मम।।
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सीन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

मेरे स्नान करते समय पुष्कर, प्रयाग आदि पवित्र तीर्थ और गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी आदि पवित्र नदियाँ अपनी उपस्थिति से इस जल को पवित्र बनाये।

आपो नारा इति प्रोक्तास्ता एवास्यायनं पुनः।
तस्मान्नारायणं देवं स्नानकाले स्मराम्यहम्।।

जलका नाम 'नारा' है और नारायण का निवास भी वे हैं। इसलिए स्नान के समय मैं भगवान् नारायण का स्मरण करता हूँ।

गौणस्नान–

अस्वस्थता आदि के कारण यदि मनुष्य विधिवत् स्नान न कर सके तो शास्त्र में उसके लिए गौण-स्नान भी बताए गए है:–

असामर्थ्याच्छरीरस्य देशकालाद्यपेक्षया।
मंत्रस्नानादिका सप्त केचिदिच्छन्ति सूरयः॥
मान्त्रं भौमं तथाग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च।
कापिलं मानसं चैव सप्तस्नानान्यनुक्रमात्॥

'आपोहिष्ठा' आदि मंत्रों से अंगों का प्रोक्षण मंत्र स्नान, मृत्तिका-स्नान, भौम-स्नान, भस्म-स्नान, आग्नेय स्नान-धूप में बैठना दिव्य स्नान और आत्मचिंतन मानस स्नान हैं तथा गीले वस्त्र से शरीर को पोंछ लेना कापिल स्नान कहलाता है।

स्नान से पूर्व भक्षणीय पदार्थ–

दूध, फल, मूल, जल, ईख, पान व औषधि का सेवन स्नान से पहले भी किया जा सकता है, जैसा कि कहा है–

इक्षुरापः फलं मूलं पयस्ताम्बूलमौषधम्।
भक्षयित्वापि कर्त्तव्या स्नानदानादिकाः क्रियाः।।

गृह-स्नान में स्नानकालीन तर्पण की आवश्यकता नहीं है। कहा है कि–

'गृहस्नाने न तु प्रोक्तं मार्जनं तर्पणादिकम्।'

मंगल-स्नान–

यदि संभव हो तो प्रतिदिन अन्यथा पर्व, व्रत तथा संस्कार आदि विशेष मांगलिक अवसरों पर शरीर पर उद्वर्तन (उबटन) लगाकर मंगल-स्नान करने का विधान है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि–

सर्वोषधिः कृष्णतिला गन्धमामलकैस्तथा।
सुगन्धिना चम्पकादितैलयुक्तं सचूर्णकम्।।
उद्वर्त्याङ्गानि चूर्णं तन् मङ्गलस्नानमाचरेत्।
एवं स्नानं प्रकुर्वीत ब्राह्मणैः सह निश्चितम्।।

सर्वोषधी, काले तिल, सुगन्धित पदार्थ और आँवला के चूर्ण में सुगन्धित तेल मिलाकर उबटन कर मंगलस्नान करना चाहिए।

संकल्प–

स्नान, सन्ध्या, यज्ञ आदि प्रत्येक कार्य के आरम्भ में हम संकल्प करते हैं। यह संकल्प उस कर्म के सम्पादन और पूर्ति में हमारे दृढ़ निश्चय का सूचक होता है। एक बार मनुष्य जब संकल्प करके किसी धर्म में प्रवृत्त हो जाता है तो चाहे कितने ही व्यवधान क्यों न आवें वह कार्य जब तक सम्पूर्ण न हो जाए उससे हटता नहीं। साथ ही संकल्प करते समय हम प्रतिदिन तिथि, वार, नक्षत्र आदि का स्मरण भी करते हैं। इस प्रकार संकल्प से सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर आज तक की काल-गणना भी हमें अनायास ज्ञात रहती है। संकल्प के सम्बन्ध में कहा गया है कि:–

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि।

तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि।

हे भगवन् मैं अमुक शुभ कर्म करने का संकल्प लेता हूँ। इस कर्म के सम्पादन में मैं समर्थ बनूँ मुझमें आप ऐसी सामर्थ्य दीजिए। इस शुभ कर्म के द्वारा मैं अनृत (असत्य) को त्याग कर सत्य को ग्रहण करता हूँ।

संकल्पं च सदा कुर्यात् स्नानदानव्रतादिके।
अन्यथा पुण्यकर्माणि निष्फलानि भवन्ति च।।
संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसंभवाः।
व्रतं नियमधर्मौ च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः।।

संकल्प कैसे करना चाहिए इस सम्बन्ध में कहा गया है कि–

संकल्पश्चेन्मनसि मननं प्रोक्तरीत्याथ वाचा।
व्याहर्तव्यं तदनु च करेणाम्बुसेकस्त्रिधेति।।

अर्थात् संकल्प में सबसे पहले तो अपने मन में कार्यसम्पादन का दृढ़ निश्चय किया जाता है, फिर संकल्प के शब्द या वाक्यों का उच्चारण कर उस निश्चय को प्रकट किया जाता है और अन्त में दाएं हाथ में लिए गए जल को भूमि पर गिरा कर या देते समय अथवा वरण के समय दूसरे व्यक्ति (जिसे वरण करना या दान देना होता है) के हाथ में संकल्प जल और उसके साथ दक्षिणा-द्रव्य दे दिया जाता है। संकल्प करते समय दैव कर्म में दाँए हाथ में जल लेकर उसके ऊपर बायां हाथ सीधा और पितृकर्म में उल्टा रखना चाहिए। दानादि सङ्कल्प में जल के साथ अक्षत, पुष्प, गन्ध, सुपारी तथा दक्षिणा लिए जाते हैं।

शर्मा, वर्मा, गुप्त आदि–

संकल्प करते समय वर्ष तिथि-वार आदि के साथ संकल्प करने वाले को अपने नाम, गोत्र, शाखा, प्रवर और कर्म के उद्देश्य आदि का भी उच्चारण करना होता है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए

कि ब्राह्मण के नाम के अन्त में शर्मा, क्षत्रिय के वर्मा वैश्य के गुप्त और शूद्र के दास लगाना चाहिए। 'शर्मा' का अर्थ है कल्याणकारक 'वर्मा' का कवच या रक्षक और गुप्त का रक्षित धन।

शर्मान्तं ब्रह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य च।
गुप्तान्तं चैव वैश्यस्य दासान्तं शूद्रजन्मनः।।

जप और उसका प्रकार

सन्ध्यावंदन में गायत्री जप किया जाता है। यदुपरान्त महामृत्युञ्जय आदि मंत्रों का जप भी किया जाता है। गायत्रीमंत्र तीनों वेदों का सार है। जैसा कि कहा गया है–

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादपादमद्दुहत्।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्या परमेष्ठी प्रजपतिः।।

मनुस्मृति २/७७

जप की बड़ी महिमा है। योगदर्शन में कहा है कि–

'तज्जपस्तदर्थभावनम्।'

इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि–

यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि–

यह जप रुद्राक्ष की माला से किया जाता है। विशेष निमित्त से अथवा स्वसम्प्रदायानुसार तुलसी, स्फटिक, चन्दन आदि की मालाएं भी ली जाती हैं।

रुद्राक्षका महत्त्व–

हमारे यहाँ रुद्राक्ष-माला धारण की बड़ी महिमा है। आज चिकित्सा-जागत् में यह स्वीकार किया गया है कि रक्तचाप (ब्लड्प्रेशर) में रुद्राक्ष धारण एक अमोघ औषधि है। इस रोग में रुद्राक्ष की माला नित्य पहने रहने से अभूतपूर्व लाभ होता है। यही कारण है कि जप आदि के समय रुद्राक्ष माला को इतना अधिक महत्त्व दिया

गया है। जप का विधान यह है कि माला को गोमुखी में रखकर या माला और हाथ को किसी वस्त्र से ढंककर माला को मध्यमा अंगुली पर रखकर अंगूठे से बाहर से अन्दर की ओर फेरना चाहिए और सुमेरु का उल्लंघन न कर वापिस उसी ओर घुमा लेनी चाहिए। मंत्र का उच्चारण इस प्रकार मन ही मन में किया जाय कि जप के समय यथासंभव ओठ भी न हिलने पाएं।

करमाला–

यदि रुद्राक्ष आदि की माला न मिल सके तो करमाला से भी जप किया जा सकता है। उसका प्रकार यह है कि अनामिका अंगुली के मध्यभाग से आरंभ कर कनिष्ठिका के पेरुओं पर होते हुए तर्जनी के मूल तक दस पेरुओं पर क्रमशः जप करें। मध्यमा के जो दो पोरु शेष रहते हैं, उन्हें सुमेरु मान कर छोड़ दें।

आरभ्यानामिकामध्ये पर्वाण्युक्तान्यनुक्रमात्।
तर्जनीमूलपर्यन्तं जपेद्दशसु पर्वसु।।

एकमाला में १०८ बार जप किया जाता है।

शिखा-सूत्र (यज्ञोपवीत)–

नित्यकर्म के समय शिखा-बन्धन एवं यज्ञोपवीत धारण किए रहने का विधान है। यज्ञोपवीत के तीन सूत्र हमें देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण का सदा स्मरण कराते रहते हैं। यज्ञोपवीत यह मंत्र पढ़कर धारण किया जाता है–

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि।।

पुराने यज्ञोपवीत को गले से बाहर निकालकर–

'समुद्रं गच्छ स्वाहा।'

मंत्र पढ़कर जलाशय में डाल दे।

भस्म-तिलक धारण–

स्नान के बाद और सन्ध्या आदि कर्म के पहले भस्म, चन्दन या तीर्थ-मृत्तिका या जल से त्रिपुण्ड्र या अपने सम्प्रदाय के अनुसार ऊर्ध्वपुण्ड्र आदि तिलक धारण करने का विधान है। चन्दन भगवान पर चढ़ाने के बाद ही स्वयं लगाए। भस्म का तिलक लगाते समय यह मंत्र बोले--

'त्र्यायुषं जमदग्नेः' इससे ललाट पर।

'कश्यपस्य त्र्यायुषम्' इससे गले में।

'यद्देवेषु त्र्यायुषम्' इससे दोनों कन्धों के नीचे।

'तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्' इससे हृदय पर भस्म लगाएँ।

कुशा-सुवर्ण आदि की पवित्री धारण–

नित्य-नैमित्तिक आदि सभी प्रकार के शुभ कार्यों में कुशा की पवित्री अथवा सोने-चाँदी या ताँबे की अंगूठी के धारण किये रहने का भी विधान है। कुशा और सुवर्ण में विद्युत्-शक्ति रहती है और इसीलिए ये पदार्थ रोगाणु और अपवित्रता को दूर कर पवित्रता प्रदान करते हैं। यही कारण है कि हमारे यहाँ कुशा और सुवर्ण को इतना महत्त्व दिया गया है। इसी प्रकार रेशम एवं ऊन के वस्त्र भी विद्युत्शक्ति सम्पन्न होने के कारण ही पवित्र माने गए है। आसन भी इसीलिए कुशा और कम्बल आदि के ही श्रेष्ठ समझे गए हैं।

प्राणायाम–

नित्य, नैमित्तिक आदि प्रत्येक शुभ-कार्य में हमारे यहाँ **'प्राणायाम'** करने का विधान है। प्राणायाम से प्राण-शक्ति और आयु बढ़ती है। प्राणायाम की विधि गुरु से विधिवत् सीख लेनी चाहिए। यों प्राणायाम में पहले श्वास या प्राणवायु को नासिका के दाएं छिद्र से ऊपर खींचा जाता है (पूरक), फिर कुछ क्षणों तक प्राण वायु को रोके रहते हैं (कुंभक) और अन्त में नासिका के दूसरे छिद्र से धीरे

धीरे निकालते हैं। इसे 'रेचक' कहते हैं। प्राणयाम के समय सप्त महाव्याहृतियों, गायत्रीमंत्र और उसके अन्त में 'ॐ आपो ज्योतिरसोऽमृतम्' इस मंत्र का मन ही मन पाठ करते रहना चाहिए। कहीं पर ऐसा भी कहा गया हैं–

दक्षिणे रेचयेद्वायुं वामेनापूरितोदम्।
कुम्भकेन जपं कुर्यात् प्राणायामो भवेदिति।।

विनियोग

सन्ध्या आदि में मंत्रों के द्रष्टा ऋषि, देवता, छन्द और जिस कर्म में वह मंत्र प्रयुक्त हो रहा है, इसका उल्लेख भी किया जाता है। इसी को विनियोग कहते हैं।

सन्ध्या, पञ्चमहायज्ञ और देवार्चन–

स्नान के बाद सन्ध्या, पञ्चमहायज्ञ और पञ्चदेवोपासना का विधान है। पञ्चमहायज्ञों के सम्बन्ध में कहा है कि–

''पञ्चैव महायज्ञास्तान्येव महासत्राणि, भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञः पितृयज्ञो देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञ'' इति।

पञ्च महायज्ञों की आवश्यकता बताते हुए कहा गया है कि चक्की, चुल्हा, झाड़, ऊंखल आदि कूटने के स्थान तथा पानी के घड़े आदि रखने के स्थान में गृहस्थ व्यक्ति से चींटी आदि छोटे मोटे जीवजन्तुओं की हिंसा होती है, उस पाप के निवारण के लिए, तथा देवता, ऋषि, पितर और समाज का जो हम पर ऋण है, उससे उऋण होने के लिए मनुष्य को प्रतिदिन पञ्चमहायज्ञ करने चाहिएँ। सन्ध्या के बाद वेद आदि शास्त्रों के स्वाध्याय को ही ब्रह्मयज्ञ कहते हैं। ऋषियज्ञ और स्वाध्याय यज्ञ भी ब्रह्मयज्ञ को भी कहते हैं। १. ब्रह्मयज्ञ, २. देवयज्ञ, ३. भूतयज्ञ, ४. पितृयज्ञ और ५. मनुष्ययज्ञ–ये पञ्च महायज्ञ हैं।

पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करी।

कण्डिनी चोदकुम्भी च तासां पापस्य शान्तये।

ब्रह्मयज्ञ या स्वाध्याय–

प्रतिदिन वेदपुराण, गीता, रामायण, महाभारत आदि धर्म ग्रन्थों का स्वाध्याय, पठन-पाठन, सुनना सुनाना भी ब्रह्मयज्ञ है। गायत्री का जप भी ब्रह्मयज्ञ ही है।

ऋषि-मुनियों ने वेदशास्त्र आदि के द्वारा ज्ञान प्रदान कर हमें मानव बनाया है। उनके इस उपकार या ऋण से हमें उऋण होने का प्रयत्न करना चाहिए। ऋषियों के ऋण से उऋण होने का उपाय यह है कि हम उनके दिए ज्ञान को तेजस्वी बनाएं। अर्थात् उसे सुरक्षित रखते हुए पल्लवित करें।

तेजस्विनावधीतमस्तु।

स्वाध्याय या ज्ञान तेजस्वी तभी बन सकता है जब हम ज्ञान की ज्योति को निरन्तर प्रज्वलित रखें। प्रतिदिन वेद-शास्त्रों के पठन-पाठन से ही यह ज्ञान--यज्ञ या ब्रह्मयज्ञ सम्पन्न हो सकता है। इसीलिए कहा गया है कि–

स्वाध्यायोऽध्येतव्यः, स्वाध्यायान्मा प्रमदः।

देवयज्ञ-हवन–

देवगण हमें अन्न जल आदि जीवनोपयोगी नानाविध पदार्थ प्रदान कर उपकृत कर रहे हैं। उनके ऋण से उऋण होने के लिए नित्य हवन किया जाता है। यही देवयज्ञ है। गीता में कहा है कि–

'तैर्दत्तानप्रदायेभ्यो यो भुंक्तेस्तेन एव सः।'

देवताओं द्वारा दिए गए पदार्थों को उन्हें समर्पित किए बिना जो अपने काम में लेता है वह चोर है।

भूतयज्ञ–

धाता-विधाता आदि भूताधिष्ठातृ देवताओं के निमित्त अन्न समर्पित

करना तथा कृमि-कीट-पतङ्ग-पशु-पक्षी आदि के निमित्त अन्न प्रदान करना भूतयज्ञ कहलाता है।

पितृयज्ञ–

पितरों की तृप्ति के लिए 'स्वधा' शब्द के उच्चारणपूर्वक अन्न-जल समर्पित करना ही पितृयज्ञ है।

मनुष्य-यज्ञ–

घर पर आए हुए अतिथि का अन्न आदि से सत्कार करना और सनक आदि दिव्य मनुष्यों के निमित्त अन्न समर्पित करना मनुष्य-यज्ञ है।

देवार्चन–

एक ही परब्रह्म परमात्म-देव के ब्रह्मा, विष्णु और शिव–ये तीन रूप हैं। इनमें से ब्रह्माजी की पूजा पुष्कर के सिवा अन्यत्र नहीं होती। शक्ति-तत्त्व तो शक्तिमान् से अभिन्न है ही। इनके साथ ही देवताओं में प्रमुख गणेश और पृथ्वी आदि लोकों के धारक ये सूर्यनारायण, ये पाँचों–शिव, विष्णु, दुर्गा, गणेश और सूर्य पञ्चदेव कहलाते हैं। दक्षिण में देव-सेनापति स्वामी कार्तिकेय की पूजा का भी प्रचार है। इन छहों देवताओं की उपासना का फिर से प्रचार करने के कारण ही आद्य शंकराचार्य को 'षण्मतप्रतिष्ठापकाचार्य' कहते हैं। 'एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति' के अनुसार उस एक ही ब्रह्म की अनेक नाम रूपों में उपासना की जाती है। अपने इष्टदेव के साथ पञ्चदेवोपासना हमारे यहाँ मान्य है। मार्ग में या कहीं भी देवप्रतिमा के दर्शन हो जाएँ तो श्रद्धापूर्वक प्रणाम करने का विधान है। प्रतिमा को अपने दाएँ रखकर ही चलना या परिक्रमा करनी चाहिए।

भोजन सम्बन्धी नियम–

इस प्रकार स्नान सन्ध्या पञ्चमहायज्ञ और देवार्चन के बाद जब भोजन का समय हो तो पहले तुलसी पत्र विल्व पत्र या पुष्प डालकर भगवान् को भोग लगाया जाय। उसके बाद पहले अतिथि

को भोजन कराकर फिर बाल वृद्धातुरों के भोजन करने के बाद स्वयं भोजन करे। भोजन से पूर्व हाथ-पाँव धो ले और शुद्ध पवित्र स्थान में प्रसन्न और स्वस्थचित्त से भोजन करना चाहिए। गौ तथा कुत्ते और कौवों के लिए ग्रास आदि निकालने के बाद विधिपूर्वक भोजन करें। भोजन के सम्बन्ध में कहा गया है कि मुनष्य को हितभुक् और मितभुक् होना चाहिए। अर्थात् पौष्टिक हितावह स्निग्ध मधुर पदार्थों का सेवन पहले करना चाहिए।

यह तो हुई 'हितभुक्' की बात। साथ ही यह भी कहा गया है कि भोजन उतना ही करना चाहिए जितना सरलता से पचाया जा सके। इसीलिए 'हितभुक्' के साथ 'मितभुक्' की बाद कही गई है। यह भी बताया गया है कि खीर यावगू-लपसी हलुआ आदि द्रव तथा मधुर पदार्थ पहले खाए और कठोर या ठोस पदार्थ बाद में और अन्त में भी द्रव पदार्थों का ही सेवन करना चाहिए।

सन्ध्या के समय दीपक (चाहे वह बिजली का हो या और कोई) जलते ही अथवा ज्योति को देखते ही उसे परब्रह्म परमात्मदेव की साक्षात् ज्योति मानकर प्रणाम करते हैं। इस समय उपस्थित बड़े लोगों को भी प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद लेना चाहिए।

तुलसी का भी हमारे यहाँ बड़ा महत्व है। चरणामृत हो या प्रसाद सभी में तुलसी-दल रहता है।

सोने से पहले प्रभु स्मरण अवश्य कर लेना चाहिए। साथ ही यह भी सोच लेना चाहिए कि अगले दिन प्रातः कब उठना है। जिस समय का आप निश्चय करके सोएंगे उसी समय आपकी नींद खुल जाएगी। सोने से पूर्व निम्नलिखित प्रार्थना कर लेनी चाहिए:-

प्रभो शंभो दीनं विहितशरणं त्वच्चरणयो-
र्भवारण्यादस्माद् विषमविषयाशीविषवृतात्।।
समुद्धृत्य श्रद्धाविधुरमपि बद्धादरकरम्
दयादृष्ट्या पश्यन्निजतनयमात्मीकुरु शिव।।

हे कल्याणकारक देवाधिदेव भगवान् शंकर! मैं दीन आपके चरणों की शरण में आया हूँ। मेरे हृदय में आपके प्रति वैसी श्रद्धा नहीं है फिर भी मैं हाथ जोड़ कर आपसे प्रार्थना करता हूँ कि हे भगवन् संसार रूपी इस संकटमय विषैले जीवों से भरे गहन वन से मुझे निकाल लिजिए और कृपादृष्टि से देखकर मुझे अपना लिजिए।

शयन से पूर्व निम्न मंत्र का पाठ भी कल्याणकारक है–

अगस्तिर्माधवश्चैव मुचुकुन्दो महाबलः।
कपिलो मुनिरास्तीकः पञ्चैते सुखशायिनः।।

तृतीय-अंशु

शरीर ही सब कुछ नहीं है
थोड़ी सेवा आत्मा की भी करें

—सन्ध्या पञ्च महायज्ञ आदि—

'संधौ संध्यामुपासीत नोदिते नास्तगे रवौ।'

सूर्योदय और सूर्यास्त के कुछ पहले संधिवेला में संध्योपासना करनी चाहिए।

'ऋषयो दीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः'

ऋषि लोग बहुत देरतक संध्या किया करते थे, इसीलिए उनकी इतनी लम्बी आयु होती थी।

सन्ध्या

प्रात:काल सूर्योदय से पूर्व और सायंकाल सूर्यास्त के समय सन्ध्या अवश्य करनी चाहिए। सन्ध्या शब्द का अर्थ है, जिससे परब्रह्म का भलीभाँति ध्यान किया जाय, उसे सन्ध्या कहते हैं।

'सम्यग् ध्यायन्ति सम्यग् ध्यायते वा परब्रह्म यया यस्यां वा सा सन्ध्या।'

सन्ध्या के लिए आवश्यक सामग्री–

सन्ध्या के लिए सर्वप्रथम तो एक पवित्र और शुद्ध वातावरण में घर या मन्दिर के किसी ऐसे स्थान में जहाँ कोलाहल न हो और मन की एकाग्रता बनी रहे कुशा या मृगचर्म आदि का पवित्र आसन होना चाहिए। अच्छा तो यह होगा कि घर में जहाँ रसोई आदि के लिए अलग-अलग स्थान निश्चित किए जाएं वहीं सन्ध्यावन्दन और देवार्चन के लिए भी एक स्थान बना लिया जाय। सदा वहीं पर यह कार्य सम्पादित हो।

आसन के बाद धूप, दीप, अगरबत्ती, भस्म-चन्दन, पञ्चपात्र, आचमनी, अर्घा, आदि पूजा के पात्र भी मांज कर पहले से रख लिए जायँ। शुद्ध जल से भरा हुआ पात्र तो रहना ही चाहिए। स्नान के बाद पूर्वोक्त विधि के अनुसार तिलक धारण आदि कर लेना चाहिए।

सन्ध्या में कोई बहुत अधिक समय नहीं लगता गायत्री जपसहित केवल १५ मिनट में सन्ध्या और आधे घंटे में पञ्चमहायज्ञ हो जाते हैं। इस प्रकार प्रात:-सायं १५-१५ मिनट तो हमें अपनी आत्मोन्नति के लिए अवश्य देने ही चाहिए।,

सन्ध्या-विधि–

सर्वप्रथम निम्न तीन मंत्रों को पढ़ते हुए ब्रह्मतीर्थ (अंगूठे के मूल) से तीन बार आचमन करें–

ॐ केशवाय नमः स्वाहा, ॐ नारायणाय नमः स्वाहा,

ॐ माधवाय नमः स्वाहा, तत्पश्चात् **ॐ गोविन्दाय नमः** कहकर हाथ धोले।

अंग-स्पर्श–

तब निम्नलिखित मंत्र बोलते हुए भीगी हुई अंगुलियों से मुख आदि का स्पर्श करे–

ॐ वाक् वाक् (मध्यमा अनामिका से मुख) **ॐ प्राणः प्राणः** (तर्जनी अंगुष्ठ से नासिका) **ॐ चक्षुः चक्षुः** (मध्यमा अंगुष्ठ से नेत्र) **ॐ श्रोत्रम् क्षोत्रम्** (अनामिका अंगुष्ठ से कान) **ॐ नाभिः** (कनिष्ठिका अंगुष्ठ से) **ॐ हृदयम्** (दाहिने हाथ से) **ॐ कण्ठः, ॐ मुखम्, ॐ शिरः** (सब अंगुलियों से) **ॐ शिखा, ॐ बाहुभ्यां यशोबलम्** (पाँचों अंगुलियों से एक दूसरी भुजा का) फिर किसी पात्र में शुद्ध जल रखकर उसे बाए हाथ में उठा ले और दाएँ हाथ से अपने शरीर पर जल सींचते हुए निम्नांकित मंत्र पढ़े–

निम्नांकित मंत्र पढ़े–

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।

(मुनष्य अपवित्र हो या पवित्र अथवा किसी भी दशा में स्थित हो, जो पुण्डरीकाक्ष (कमलनयन) भगवान् विष्णु का स्मरण करता है, वह बाहर और भीतर सब ओर से शुद्ध हो जाता है।)

संकल्प

तब दाएं हाथ में जल लेकर यह संकल्प पढ़ कर उस जल को भूमि पर गिरा दे–

हरिः ॐ तत्सदद्यैतस्य श्रीब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते पुण्यक्षेत्रे कलियुगे कलिप्रथमचरणे अमुकसंवत्सरे, अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकशर्मा अहं ममोपात्तदुरितक्षयपूर्वकं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातः (सायं अथवा मध्याह्न) संध्योपासनं करिष्ये।

यहां 'अमुक' शब्द के स्थान में संवत्सर मास तिथि तथा अपना गोत्र नाम आदि जोड़ लेना चाहिए।

भू-प्रार्थना–

फिर नीचे लिखे मन्त्र से आसनपर जल छिड़ककर दायें हाथ से उसका स्पर्श करे–

ॐ पृथ्वी त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्।।

(हे पृथ्वी देवि तुमने सम्पूर्ण लोको को धारण कर रखा है और भगवान् विष्णु ने तुमको धारण किया है। हे देवि तुम मुझे धारण करो और मेरे आसन को पवित्र कर दो।)

अभिषेक–

फिर बाएं हाथ में जल लेकर दाएं हाथ में अपने अंगों पर निम्न मंत्र पढ़ते हुए जल के छींटे दें–

ॐ भूः पुनातु शिरसि (सिर पर) **ॐ भुवः पुनातु नेत्रयोः** (आँखों पर), **ॐ स्वः पुनातु कण्ठे** (गले पर) **ॐ महः पुनातु हृदये** (हृदये पर) **ॐ जनः पुनातु नाभ्याम्** (नाभि पर) **ॐ तपः पुनातु पादयोः** (पैरों पर) **ॐ सत्यं पुनातु पुनः शिरसि** (फिर सिर पर) **ॐ खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र** (सब अंगों पर)।

यह मन्त्र एक बार पढ़कर जल छोड़े व आचमन करे–

ऋतञ्चेतित्र्यर्चस्य माधुच्छन्दसोऽघमर्षणऋषिरनुष्टुप्
छन्दो भाववृत्तं देवतामपामुपस्पर्शने विनियोगः।

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिशतो वशी सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः।

(महाप्रलय के बाद इस महाकल्प के आरम्भ में, सब ओर से प्रकाशमान तपरूप परमात्मा से ऋत और सत्य उत्पन्न हुए। उसी से ब्रह्मा जी भी प्रकट हुए तथा उसी से जलमय समुद्र बना। जलमय समुद्र की उत्पत्ति के बाद दिनों और रात्रियों को धारण करने वाला कालस्वरूप संवत्सर प्रकट हुआ जो कि पलक मारनेवाले जंगम प्राणियों और स्थावरों से युक्त सारी सृष्टि को अपने वश में रखे हुए है। इसके पश्चात् सबको धारण करने वाले ब्रह्मा ने सूर्य, चन्द्र, द्युलोक पृथ्वी, अन्तरिक्ष आदि लोकों की भी पूर्वकल्प के अनुसार सृष्टि की।)

प्राणायाम–

हाथ में जल लेकर निम्नलिखित विनियोग पढ़कर जल छोड़ दे–

ॐकारस्य ब्रह्मा ऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता सप्तव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपंक्तित्रिष्टुब्जगत्यगत्य-श्छन्दांस्यग्निवायुसूर्यबृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवा देवताः तत्सवितुरिति विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता, आपोज्योतिरिति शिरसः प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दो ब्रह्माग्निवायुसूर्या देवताः प्राणायामे विनियोगः।

इसके पश्चात् आँखें बन्द करके नीचे लिखे मन्त्र से प्राणायाम करें।

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्।।

ॐ तत्सवितुः आदि गायत्री मंत्र का अर्थ यह है–

हम इस सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करनेवाले श्रेष्ठ तेज का ध्यान करते हैं। वह हमारी बुद्धियों को प्रेरित करे। वह परब्रह्म, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जन लोक, तपोलोक और सत्यलोक नामक सब लोकों में व्याप्त है। आपो ज्योति आदि का अर्थ है, वह सच्चिदानन्दस्वरूप जलरूप से जगत् का पालन करनेवाला अनन्त तेज का धाम, रसमय, अमृतमय और भूर्भुवः स्वः स्वरूप (त्रिभुवनात्मक) ब्रह्म है।

फिर यह मन्त्र एक बार पढ़कर एक बार आचमन करे–

सूर्यश्च मेति नारायण ऋषिः प्रकृतिश्छन्दः सूर्यमन्युमन्युपतयो रात्रिश्च देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मुन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा।।

(सूर्य, क्रोध के अभिमानी देवता और क्रोध के स्वामी ये सभी क्रोधवश किये हुए पापों से मेरी रक्षा करें-मुझे क्रोध न करने की क्षमता प्रदान करें। ऐसे ही मैंने मन, वाणी, हाथ, पैर उदर और शिश्नेन्द्रिय से जो पाप रात्रि में किये हों उनको रात्रिकालाभिमानी देवता नष्ट करे जो कुछ भी पाप मुझमें वर्तमान हैं इसको और इसके कर्तृत्व का अभिमान रखनेवाले अपने को मैं अमृतमय प्रकाशमान सूर्यरूपी परमेश्वर में समर्पित करता हूँ।)

मध्याह्न में नीचे लिखे मन्त्र को एक बार पढ़कर एक बार आचमन करें–

आपः पुनन्त्विति नारायणऋषिरनुष्टुप् छन्दः आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम्। पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम्। यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहꣳ स्वाहा।।

(जल पृथ्वी को पवित्र करें, पवित्र हुई पृथ्वी मुझे पवित्र करे। वेदों के प्रति परमात्मा मुझे शुद्ध करें। मैंने जो कभी किसी भी प्रकार का उच्छिष्ट या अभक्ष्य भक्षण किया हो अथवा इसके अतिरिक्त पाप हो उन सबको दूर करके जल मुझे शुद्ध कर दे तथा नीच पुरुषों से लिए हुए दानरूपी दोष को भी दूर करके जल मुझे पवित्र करे। इन सब दोषों का भलीभाँति हवन हो जाए।)

विशेष—सायंकाल के मंत्र में '**सूर्यश्च**' के स्थान पर अग्निश्चः रात्रिं के स्थान पर अहः और रात्र्या के स्थान पर अह्ना पढ़ना चाहिए।

मार्जन—

इसके बाद निम्नांकित तीन ऋचाओं को पढ़कर कुशाओं अथवा तीन अंगुलियों से मार्जन करें:

आपो हिष्ठेति त्र्यृचस्य सिन्धुद्वीप ऋषिर्गायत्री छन्द आपो देवताः मार्जने विनियोगः।

ॐ **आपो हिष्ठा मयोभुवः** (मस्तक पर) ॐ **ता न ऊर्ज्जे दधातन** (भूमि पर) ॐ **महे रणाय चक्षसे** (हृदय पर) ॐ **यो वः शिवतमो रसः** (हृदय पर) ॐ **तस्य भाजयतेह नः** (भूमि पर) ॐ **उशतीरिव मातरः** (मस्तक पर) ॐ **तस्मा अरं गमाम वः** (मस्तक पर) ॐ **यस्य क्षयाय जिन्वथ** (हृदयपर) ॐ **आपो जनयथा च नः** (भूमि पर)।

(हे जल! तु निश्चय हि कल्याणकारी हो अतः (अन्नादि रसों के द्वारा) बल की वृद्धि के लिए यथा अत्यन्त रमणीय परमात्मदर्शन के लिए तुम हमारा पालन करो। जिस प्रकार पुत्रों की पुष्टि चाहने वाली माताएँ उन्हें अपने स्तनों का दुग्ध पान कराती हैं, उसी प्रकार तुम्हारा जो परम कल्याणमय रस हैं, उसके भागी हमें बनाओं। हे जल! जगत् के जीवनाधारभूत जिस रसके एक अंश से तुम समस्त विश्व को तृप्त करते हो उस रस की पूर्णता को हम प्राप्त हों। हे जल! तु हमें उस रस का भोक्ता बनाओ)

फिर निम्नलिखित मंत्र पढ़कर हाथ में जल लेकर उसे अपनी बाई ओर फेंक दे–

ॐ सुमित्रिया दुर्मित्रिया इति द्वयोः प्रजापतिः ऋषिः आपो देवता अनुष्टुप् छन्दः जलावग्रहणे विनियोगः।

ॐ सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु। यह पढ़कर हाथ में जल ले। **दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः।** यह पढ़कर जल को बायीं ओर गिरा दे।

(हे जल और जल से उत्पन्न होने वाली औषधियों आप हमारे लिए सुमित्र और हमसे द्वेष करने वालों के लिए दुर्मित्र बनें।)

फिर बायें हाथ में जल लेकर उसे दाहिने हाथ से ढक ले और नीचे लिखे मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उसे सिर पर छिड़क ले:–

द्रुपदादिवेत्यस्य कोकिलरापुत्र ऋषिरनुष्टुप्छन्द आपोदेवताः शिरस्सेके विनियोगः।

ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव।
पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः।।

(जैसे पादुका से अलग होता हुआ मनुष्य पादुका के मलादि दोषों से मुक्त हो जाता है, जिस प्रकार पसीने से भीगा पुरुष स्नान करने के पश्चात् मैल से रहित होता है तथा जैसे पवित्रक आदि से घी शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार जल मुझे पापों से शुद्ध करे।)

अघमर्षण–

अघमर्षण शब्द का अर्थ है पापों (के परिणाम) को सहन करने की क्षमता। इस मंत्र को पढ़कर पापों को नष्ट करने की भावना करे और बाएँ हाथ में जल लेकर उसे नासिका से लगाकर उसे बायीं और फेंक दे:

ऋतञ्चेति त्र्यृचस्य मधुश्छन्दसोऽघमर्षण ऋषिरनुष्टुप् छन्दो भाववृत्तं देवतमघमर्षणे विनियोगः।

अघमर्षण मन्त्र इस प्रकार है:–

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।

फिर निम्नांकित मन्त्र को एक बार पढ़कर एक बार जल का उपस्पर्शन करे:

अन्तश्चरसीति तिरश्चीन ऋषिरनुष्टुब्छन्द आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपोज्योती रसोऽमृतम्।।

(हे जलरूप परमात्मन्! तुम समस्त प्राणियों के भीतर उनकी हृदयरूप गुहा में विचरते हो, तुम्हारा सब ओर मुख है, तुम्हीं यज्ञ हो तुम्हीं वषट्कार-इन्द्रादि का भाग हविष्य हो और तुम्हीं जल, प्रकाश रस एवं अमृत हो।)

सूर्यार्घ्य व सूर्योपस्थान–

फिर सूर्य के सामने एक पैर से खड़ा होकर ॐकार और व्याहृतियों सहित गायत्री मन्त्र को तीन बार पढ़कर पुष्प मिले हुए जल से सूर्य को तीन बार अर्घ्य दे। गायत्री मन्त्र के विनियोग में यहाँ 'सूर्यार्घ्यदाने' विनियोगः कहे।

गायत्री मन्त्र पढ़कर 'ब्रह्मस्वरूपिणे सूर्यनारायणाय इदमर्घ्यं दत्तं न मम' ऐसा कहकर प्रातःकाल अर्घ्य समर्पण करे। मध्याह्नकाल में 'ब्रह्मस्वरूपिणे' के स्थान में 'रुद्रस्वरूपिणे' और सायंकाल में 'विष्णुस्वरूपिणे' ऐसा परिवर्तन कर लेना चाहिये।

इसके पश्चात् ''असावादित्यो ब्रह्म'' कहकर चौथा अर्घ्य दे।

सूर्य को अर्घ्य देने के बाद प्रातः काल में खड़ा होकर और सायंकाल में बैठे हुए ही अञ्जलि बांधकर तथा मध्याह्नकाल में खड़ा हो दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर (यदि सम्भव हो तो) सूर्य की ओर देखते हुए 'उद्वयम्' इत्यादि चार मन्त्रों को पढ़कर उन्हें प्रणाम करे। फिर अपने स्थान पर ही सूर्यदेव की एक बार प्रदक्षिणा करते हुए उन्हें नमस्कार करके बैठ जाए।

उद्वयमिति प्रस्कण्व ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता, उदुत्यमिति प्रस्कण्व ऋषिर्निचृद्गायत्री

छन्दः सूर्यो देवता, चित्रमिति कुत्सांगिरस ऋषिस्त्रिष्टुब्छन्दः सूर्यो देवता तच्चक्षुरिति दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिरेकाधिका ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः।

ॐ उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥

ॐ उदुत्यञ्जातवेदसन्देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳसूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।।

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतम्।

(हम अन्धकार से ऊपर उठकर उत्तम स्वर्गलोक को तथा देवताओं में अत्यन्त उत्कृष्ट सूर्यदेव को भलीभाँति देखते हुए सर्वोत्तम ज्योतिर्मय परमात्मा को प्राप्त हों।)

उत्पन्न हुए समस्त प्राणियों के ज्ञाता उन सूर्यदेव को छन्दोमय अथवा किरणरूपी अश्व संपूर्ण जगत् को उनका दर्शन कराने या दृष्टि प्रदान करने के लिए ऊपर-ही-ऊपर शीघ्र गति से लिये जा रहे हैं।

(जो तेजोमयी किरणों के पुञ्ज हैं, मित्र, वरुण तथा अग्नि आदि देवताओं एवं समस्त विश्व के नेत्र हैं, और स्थावर तथा जंगम-सबके अन्तर्यामी आत्मा हैं वे भगवान् सूर्य आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्षलोक को अपने प्रकाश से पूर्ण करते हुए आश्चर्यचकित कर उदित हुए हैं)

देवता आदि सम्पूर्ण जगत् का हित करने वाले और सबके नेत्ररूप वे तेजोमय भगवान् सूर्य पूर्व दिशा से उदित हो रहे हैं। (उनके प्रसाद से) हम सौ वर्षों तक देखते रहें, सौ वर्षों तक जीते रहें, सौ वर्षों तक सुनते रहें, सौ वर्षों तक हममें बोलने की

शक्ति रहे तथा सौ वर्षों तक हम कभी दीन दशा को न प्राप्त हों। इतना ही नहीं, सौ वर्षों से अधिक काल तक भी हम देखें, जीवें, सुने, बोलें, एव कभी दीन न हों।)

गायत्री-जप–

इसके बाद निम्नलिखित मन्त्र से गायत्री का आवाहन करें–

तेजोऽसीति धामनामासीत्यस्य च परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिर्यजुस्त्रिष्टुबुष्णिहौ छन्दसी सविता देवता गायत्र्यावाहने विनियोगः।

ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि। धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि।।

(सूर्यस्वरूपा गायत्री देवि! तुम देदीप्यमान तेजोमयी हो, युद्ध हो, और अमृत (नित्य ब्रह्मरूपा) हो। तुम्हीं परम धाम और नामरूपा हो। तुम्हारा किसी से भी पराभव नहीं होता। तुम देवताओं की प्रिय और उनके यजन की साधनभूत हो। मैं तुम्हारा आवाहन करता हूँ।)

फिर निम्नलिखित मंत्र से गायत्री को प्रणाम करे–

गायत्र्यसीति विवस्वान् ऋषिः स्वराणामहापंक्तिश्छन्दः परमात्मा देवता गायत्र्युपस्थाने विनियोगः।

ॐ गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि न हि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदोमा प्रापत्।

(हे गायत्रि! तुम त्रिभुवनरूप प्रथम चरण से एकपदी हो। ऋक्, यजुः एवं सामरूप द्वितीय चरण से द्विपदी हो। प्राण, अपान तथा व्यानरूप तृतीय चरण से त्रिपदी हो और तुरीय ब्रह्मरूप चतुर्थ चरण से चतुष्पदी हो। निर्गुण स्वरूप से अचिन्त्य होने के कारण तुम 'अपद्' हो (इसीलिए वेद 'नेति-नेति' कहकर तुम्हारे स्वरूप का वर्णन करते हैं) अतएव मन-बुद्धि के अगोचर होने से तुम सबके लिए प्राप्य नहीं हो। तुम्हारे दर्शनीय (अनुभव करने योग्य) है चतुर्थ पद को, जो प्रपञ्च से परे वर्तमान शुद्ध परब्रह्मस्वरूप नमस्कार है। तुम्हारी प्राप्ति में विघ्न डालने वाले वे रागद्वेष, काम-क्रोध आदि

रूप पाप मेरे पास न पहुँच सके अर्थात्, परब्रह्मस्वरूपिणी तुमको मैं निर्विघ्न प्राप्त करूँ।

फिर कम से कम १०८ गायत्री मन्त्र का जप करे। मंत्र का अर्थ भी ध्यान में रहना चाहिए (गायत्री मंत्र के पृष्ठ ६८ के विनियोग वाक्य का 'सविता देवता' तक पढ़कर 'जपे विनियोगः' कहे।)

गायत्री मंत्र–

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रयोदयात्।

पञ्चप्रणवा गायत्री-जप की विशेष महिमा है। इसे सावच्छेद गायत्री भी कहते हैं–

ॐ भूर्भुव: स्व: ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं ॐ भर्गो देवस्य धीमहि ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ।

निम्नांकित न्यासमंत्रों को बोलता हुआ स्पर्श करे–

ॐ अङ्गुष्ठाग्रे तु गोविन्दम्, ॐ तर्जन्यां तु महीधरम्। ॐ मध्यमायां हृषीकेशम्, ॐ अनामिक्यां त्रिविक्रमम्, ॐ कनिष्ठिक्यां न्यसेद् विष्णुम्, ॐ करमध्ये तु माधवम्, करपृष्ठे हरिं विद्यान् मणिबन्धे जनार्दनम्।।

फिर नीचे लिखे मन्त्र से अपने स्थान पर खड़े होकर सूर्यनारायण की एक बार प्रदक्षिणा करे–

विश्वतश्चक्षुरिति भौवन ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो विश्वकर्मा देवता सूर्यप्रदक्षिणायां विनियोग:

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। सम्बाहुभ्यान्धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमीं जनयन् देव एकः।।

(वे एकमात्र परमात्मा पृथिवी और आकाश की रचना करते समय धर्माधर्म रूप भुजाओं और पतनशील पञ्च महाभूतों से संगत होते या काम लेते हैं। उनके सब ओर नेत्र हैं, सब ओर मुख

हैं, सब ओर भुजाएं हैं और सब ओर चरण हैं।)

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिणा पदे पदे।।

फिर निम्नांकित मंत्र पढ़कर जप निवेदन करे–

देवा गातु विद इति मनसस्पतिऋषिर्विराडनुष्टुप्छन्दो वार्ता देवता जपनिवेदने विनियोग:।

ॐ देवा गातुविदो गातुं वित्वा गातुमित मनसस्पत इमं देवयज्ञं स्वाहा व्वाते धा:।।

'हे यज्ञवेत्ता! देवो आप हमारे इस जपरूपी यज्ञ को पूर्ण हुआ जानकर अपने गन्तव्य मार्ग को पधारें। हे चित्त के प्रवर्तक परमेश्वर! मैं इस जप यज्ञ को आपके हाथ में अर्पण करता हूँ। आप इसे वायुदेवता में स्थापित करें।')

इस मन्त्र को पढ़कर नमस्कार करने के बाद–

अनेन यथाशक्तिकृतेन गायत्रीजपाख्येन कर्मणा भगवान् श्रीसूर्यनारायणः प्रीयतां न मम।

फिर भगवान् का स्मरण कर सन्ध्योपासनकर्म परमेश्वर को समर्पित करें।

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्।

हाथ में जल लेकर निम्नाङ्कित रूप से समर्पण करे–

अनेन सन्ध्योपासनाख्येन कर्मणा श्रीपरमेश्वरः प्रीयतां न मम।

ॐ विष्णवे नमः ३

ब्रह्मयज्ञ

सर्वप्रथम निम्नोक्त रीति से संक्षिप्त संकल्प करे–

अद्य पूर्वोच्चारितैवंगुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ ममात्मनः श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थम्– ॐ तत्सत् परमेश्वरप्रीत्यर्थं यथाशक्ति ब्रह्मयज्ञेनाऽहं यक्ष्ये–

ॐभूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् आदि गायत्री मंत्र पढ़ कर निम्नलिखित मंत्रों का पाठ करे–

ॐ इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्प्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्म्मणाऽआप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागम्प्रजापतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशꣳसो ध्रुवाऽअस्मिनगोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि।। वसोः पवित्रम्।। हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितम्मुखम्। योसावादित्ये पुरुषः सोसावहम्। ॐ ३ खम्ब्रह्म। व्रतमुपैष्यन्नन्तरेणाहवनीयं च गार्हपत्यं च प्राङ् तिष्ठन्नप उपस्पृशति। तद्यदप उपस्पृशत्यमेध्यो वै पुरुषो यदनृतम्वदति तेन पूतिरन्तरतो मेध्यावाऽआपो मेध्यो भूत्वा व्रतमुपायानीति पवित्रम् वा आपः पवित्रपूतो व्रतमुपयानीति तस्माद् वा अप उपस्पृशति॥१॥ सोग्निमेवाभीक्षमाणो व्रतमुपैति।

(ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। ॐ खं ब्रह्म। ॐ खं पुराणम्। ॐ वायुरेव खमिति हस्माह कौरव्यायणीपुत्रो वेदं यं ब्राह्मणाविदुर्वेदेन न यद्वेदितव्यम्।) ॐ प्राश्नीपुत्रादासुरिवासिनः प्राश्नीपुत्रऽआसुरायणा-दाणऽआसुरेरासुरिर्याज्ञवल्क्याद्याज्ञवल्क्यऽउद्दालकादुद्दालकोऽरुणादरुणऽउपवेशेरुपवेशिः कुश्रेः कुश्रिर्वाजश्रवसो वाजश्रवा जिह्वावतो बाध्योगाज्जिह्वावान् बाध्योगोऽसितादवार्षगणादसितो वार्षगणो हरितात्कश्यपाद्धरितः कैश्यपः शिल्पात् कश्यपाच्छिल्पः कश्यपःकश्यपान्नैध्रुवेः कश्यपो नैध्रु विव्वचो वागम्भिण्याऽअम्भिण्यादित्यादादित्यानीमानि शुक्लानि यजूꣳषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते।। (इत्युक्तं बृहदारण्यकोपनिषदि)।

ॐ अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्न धातमम्।। ॐ अग्नऽआयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये। निहोता सत्सि बर्हिषि।। ॐ शन्नो

देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्रवन्तु नः।। 'तच्चुर्वेदानन्तरं अंगानि पठेत्' अथानुवाकान्वक्ष्यामि। मण्डलं दक्षिणमक्षिहृदयम्। अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि। अथातोधिकारः फलयुक्तानि कर्माणि। अथातो गृहस्थालीपाकानां कर्म। वृद्धिरादैच्। समाम्नायः समाम्नातः। मयरसतजभनलगसंमितम्। पञ्चसंवत्सरमयं युगाध्यक्षम्। गौः ग्मा। अथातो धर्मजिज्ञासा। अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। योगीश्वरं याज्ञवल्क्यम्। नारायणम् नमस्कृत्य। इति विद्यातपोयोनिर्विष्णुरीडितः। वाग्यज्ञेनार्चितो देवः प्रीयतां मे जनार्दनः (एवं ब्रह्मयज्ञ विधाय पाण्योर्गृहीतकुशानां कुशपवित्रस्य च उत्तरस्यां त्यागं कुर्यात्) 'अर्पणम्' अनेन ब्रह्मयज्ञाख्येन कर्मणा श्रीभगवान् परमेश्वरः प्रीयतां न मम।। ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु।।

तर्पण

तदनन्तर देव, ऋषि और पितृगणों का तर्पण करने का विधान है। देवताओं का तर्पण जल में यव (जौ) और तुलसीदल, गन्ध, पुष्प मिला कर किया जाता है और पितृ तर्पण जल में काले तिल मिलाकर कुशा से किया जाता है। देवताओं का पूर्वाभिमुख होकर, मनुष्यों का उत्तराभिमुख और पितरों का दक्षिणाभिमुख होकर तर्पण किया जाता है। देवताओं का तर्पणा कुशाओं के अग्रभाग से, मनुष्यों का मध्यभाग से और पितरों का कुशमूलाग्र से किया जाता है। देवताओं के तर्पण के समय यज्ञोपवीत सव्य, मनुष्यों के तर्पण के समय निवीति (कण्ठमें) और पितृ तर्पण के समय अपसब्य रहना चाहिए। देवताओं के लिए 'स्वाहा' और 'नमः' तथा 'वषट्' और पितरों के लिए 'स्वधा' और 'नमः' तथा मनुष्यों के लिए 'हन्त' और 'नमः' का प्रयोग किया जाता है।

पितृ तर्पण का क्रम यह है कि पहले पिता-पितामह आदि का फिर माताओं का और फिर मातामह आदि का तर्पण किया जाता है। स्नान नित्य, नैमित्तिक और काम्य तीन प्रकार का होता है। तदनुसार तर्पण भी तीन ही प्रकार के हैं।

तर्पण में देवों को एक, मनुष्यों को दो और पितरों को तीन-तीन बार जलाञ्जलि देनी चाहिए अर्थात् एक पात्र से अञ्जलि में जल आदि लेकर दूसरे पात्र में डालता जाए।

तर्पण-प्रयोग–

सर्वप्रथम पूर्वोक्त विधि से आचमन और प्राणायाम करे और दाहिने हाथ की अनामिका में कुशा की पवित्री धारण कर ले। उस समय यह मन्त्र पढ़ें–

ॐ पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्व: प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभि:। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्काम: पुने तच्छकेयम्।।

तब संकल्प करे–

संकल्प:–ॐ विष्णवे नम:। अद्य पूर्वोच्चारित एवंगुण-विशेषण- विशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ ममात्मन: श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं ॐ तत्सत्परमेश्वरप्रीत्यर्थं देवर्षिमनुष्यपितृतर्पणमहं करिष्ये।

तब ताँबे या चाँदी के पात्र में तर्पण के लिए जल भर ले और उसमें जौ या चावल और तुलसीदल, गन्ध, पुष्प मिला ले। और उस पर तीन प्रागग्र कुशाएँ धर दे। पात्र में जल भरते समय यह मन्त्र पढ़ें–

ॐ विश्वान् देवान् भवत्सु आवाहयिष्ये। ॐ आवाहय।। ॐ विश्वे देवास आगत श्रृणुताम इमं हवम्। एदम्बर्हिर्निषीदत।। विश्वेदेवा श्रृणुतेमं हवम्मे ये अन्तरिक्षे य उपद्यविष्ठ ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्वर्हिषि मादयध्वम्।।

फिर तर्पण पात्र के ऊपर धरे तीनों कुशाओं और तुलसीदल को दाहिने हाथ की अंजली में लेकर उस पर आयीं हथेली रख कर देवताओं का आवाहन करे।

आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबला:।
ये तर्पणेऽत्र विहिता: सावधाना भवन्तु ते।। ॐ भवाम:

देवतर्पणम्

ॐ ब्रह्मा तृप्यताम्। ॐ विष्णुस्तृप्यताम्। ॐ रुद्रस्तृप्यताम् ॐ प्रजापतिस्तृप्यताम्। ॐ देवास्तृप्यन्ताम्। ॐ छन्दांसि तृप्यन्ताम्। ॐ वेदास्तृप्यन्ताम्। ॐ ऋषयस्तृप्यन्ताम्। ॐ पुराणाचार्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ गन्धर्वास्तृप्यन्ताम्। ॐ इतराचार्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ संवत्सर: सावयवस्तृप्यताम्। ॐ देव्यस्तृप्यन्ताम्। ॐ अप्सरसस्तृप्यन्ताम्। ॐ देवानुगास्तृप्यन्ताम्। ॐ नागास्तृप्यन्ताम्। ॐ सागरास्तृप्यन्ताम्। ॐ पर्वतास्तृप्यन्ताम्। ॐ सरितस्तृप्यन्ताम्।

ॐ मनुष्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ यक्षास्तृप्यन्ताम्। ॐ रक्षांसि तृप्यन्ताम्। ॐ पिशाचास्तृप्यन्ताम्। ॐ सुपर्णास्तृप्यन्ताम्। ॐ भूतानि तृप्यन्ताम्। ॐ पशवस्तृप्यन्ताम्। ॐ वनस्पतयस्तृप्यन्ताम्। ॐ ओषधयस्तृप्यन्ताम्। ॐ भूतग्रामश्चतुर्विधस्तृप्यताम्।

मनुष्यदेवतर्पणम् (दो दो बार जलाञ्जलि दें)

ॐ सनकस्तृप्यताम्॥२॥ ॐ सनन्दनस्तृप्यताम्॥२॥ ॐ सनातनस्तृप्यताम्॥२॥ ॐ कपिलस्तृप्यताम्॥२॥ ॐ आसुरिस्तृप्यताम्॥२॥ ॐ पञ्चशिखस्तृप्यताम्॥२॥

पितृतर्पणम्

फिर उन कुशाओं को दुहरा कर अपसव्य व दक्षिणाभिमुख होकर काले तिलों से युक्त जल से पितरों का तीन-तीन बार तर्पण करे।

ॐ कव्यवाडनलस्तृप्यताम्॥३॥ ॐ सोमस्तृप्यताम्॥३॥ ॐ यमस्तृप्यताम्॥३॥ ॐ अर्यमा तृप्यताम्॥३॥ ॐ अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम्॥३॥ ॐ सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम्॥३॥ ॐ बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम्॥३॥

यमतर्पणम्

ॐ यमाय नमः॥३॥ ॐ धर्मराजाय नमः।।३।। ॐ मृत्यवे नमः ॐ अन्तकाय नमः॥३॥ ॐ वैवस्वताय नमः॥३॥ ॐ कालाय नमः॥३॥ ॐ सर्वभूतक्षयाय नमः॥३॥ ॐ औदुम्बराय नमः॥३॥ ॐ दध्नाय नमः॥३॥ ॐ नीलाय नमः॥३॥ ॐ परमेष्ठिने नमः॥३॥ ॐ वृकोदराय नमः॥३॥ ॐ चित्राय नमः॥३॥ ॐ चित्राय नमः॥३॥ ॐ चित्रगुप्ताय नमः॥३॥

मनुष्यपितृतर्पणम्

उशन्तस्त्वेत्यावाहनम्— ॐ उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशत आवह पितृन्हविषे अत्तवे॥३॥ समस्तपितृनावाहयिष्ये ॐ आवाहय—अमुकगोत्र—अस्मत्पिता अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा नमः।। अमुकगोत्रः अस्मत् पितामहः अमुकशर्मा रुद्ररूपस्तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा नमः॥२॥ अमुकगोत्रः अस्मत्प्रपितामहः अमुकशर्मा आदित्यरूपस्तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा नमः॥३॥ अमुकगोत्रा अस्मन्मान अमुकदा वसुरूपा तृप्यतामिदं जलं तस्यै स्वधा नमः। अमुकगोत्रा अस्मत्पितामही अमुकदा रुद्ररूपा तृप्यतामिदं जलं तस्यै स्वधा नमः॥३॥

अमुकगोत्रा अस्मत् प्रपितापही अमुकदा आदित्यरूपा तृप्यतामिदं जलं तस्यै स्वधा नमः॥३॥ अमुकगोत्रा अस्मत् सापत्नमाता अमुकदा वसुरूपा तृप्यतामिदं जलं तस्यै स्वधा नमः॥३॥

पश्चादेतान् मंत्रान् पठेत्-

ॐ उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः। असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्तेनोऽवन्तु पितरो हवेषु। अंगिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः। तेषां वय ँ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम।। आयन्तु न पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिविर्द्देवयानैः। अस्मिन्यज्ञे स्वधयामदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्॥ ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतंघृतम्पयः कीलालम्परिस्रुतम् स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन्। पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्य स्वधा नमः। अक्षन्पितरोमीमदन्त पितरोमीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम्॥ ये चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्म यां।। उ च न प्रविद्म। त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञ ँ सुकृतं जुषस्व। मधुव्वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पर्थिव ँ रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ २ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः। ॐ मधु। मधु। मधु। तृप्यध्वम्॥३॥ ॐनमो वः पितरो रसाय नमो व पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्ः पितरो वास आधत्त॥ आधत्त पितरो गर्भं कुमारम्पुष्करस्रजम्। यथेह पुरुषो सत्।

द्वितीयगोत्रम्—अमुकगोत्रः अस्मन्मातामहः अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा नमः॥३॥ अमुकगोत्रः अस्मत् प्रमातामहः अमुकशर्मा रुद्ररूपस्तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा नमः॥३॥ अमुकगोत्रः अस्मद् वृद्धप्रमातामहः अमुकशर्मा आदित्यरूपस्तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा नमः॥३॥

अमुकगोत्रा अस्मन्मातामही अमुकदा वसुरूपा तृप्यतामिदं जलं तस्यै स्वधा नमः॥३॥ अमुकगोत्रा अस्मत् प्रमातामही अमुकदा रुद्ररूपा तृप्यतामिदं जलं तस्यै स्वधा नमः॥३॥ अमुकगोत्रा अस्मत् वृद्धप्रमातामही अमुकदा आदित्यरूपा तृप्यतामिदं जलं स्वधा नमः॥३॥

यदि तर्पण नदी सरोवर आदि पर किया जाए तो स्नान-वस्त्र को चौहरा कर उसे निम्न मन्त्र पढ़ते हुए भूमि पर बाँयीं ओर निचोड़ें, इसे 'वस्त्र निष्पीडन' कहते हैं।

ॐ ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्राः गोत्रिणो मृताः।
ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम्।।

यदि घर में तर्पण किया जाए तो वस्त्र निष्पीडन कि आवश्यकता नहीं। तब यज्ञोपवीत को सब्यकर आचमन कर ले और प्राणयाम करने के बाद देवताओं को नमस्कार और अर्घ्य प्रदान करे।

नित्यहोमविधि

प्रातःकाल स्नान-संध्या आदि के अनन्तर नित्य होम करना चाहिए।

ॐ तत्सदद्य अमुकगोत्रः अमुकशर्मा अहं श्रीपरमेश्वरप्रीतये सायं/प्रातर्होमं करिष्ये।

आदि संकल्प करने के बाद वेदी अथवा ताम्रकुण्ड में पञ्चभू संस्कार करना चाहिए। तीन कुशों से भूमि अथवा ताम्रकुण्ड को झाड़ दे, उन कुशोंको ईशानकोण में फेंक दे, फिर गोमय और जल से लेपन करे। तत्पश्चात् स्रुवा अथवा तीन कुशों द्वारा उत्तरोत्तर क्रमसे तीन-तीन पूर्वाग्र रेखाएँ करे। उल्लेखन-क्रम से अनामिका और अंगुष्ठद्वारा तीन बार मृत्तिका उठाकर ईशान में फेंक दे, फिर वहाँ जल छिड़के। इस प्रकार संस्कार करके निम्नाङ्कित मन्त्रसे वहाँ अग्नि ले आवे।

अन्वग्निरित्यस्य पुरोधा ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दोऽग्निर्देवता अग्न्यानयने विनियोगः।

ॐ अन्वग्निरुषसामग्रमक्ख्यदन्वहानि प्प्रथमो जातवेदाः। अनुसूर्य्यस्य पुरुत्रा चरश्मीननु द्यावापृथिवीऽआततन्थ।

इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर पूर्वोक्त वेदी अथवा ताम्रकुण्ड में अग्नि की स्थापना करे।

पृष्टो दिवीत्यस्य कुत्सऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो वैश्वानरो देवता अग्निस्थापने विनियोगः।

ॐ पृष्ट्टो दिवि पृष्ट्टोऽग्निः पृथिव्व्यां पृष्ट्टो व्विश्वाऽओषधीराविवेश। वैश्वानरः सहसा पृष्ट्टोऽग्निः स नो दिवा स रिषम्पातु नक्तम्।।

फिर इन मन्त्रों से अग्नि का उपस्थान करे–

समिधाग्निमिति तं त्वेति च देवा ऋषयो गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता अग्न्युपस्थाने विनियोगः।

ॐ समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। अस्मिन् व्या जुहोतन।।

ॐ तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि बृहच्छोचा यविष्ठ्य।

इसके पश्चात् नीचे लिखे [व्याहृतियोंसहित तीन] मन्त्रों से अग्निको प्रज्वलित करे:–

त्रिव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांस्यग्निवायुसूर्या देवताः, ताꣳसवितुरिति कण्वऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः सविता देवता, तत्सवितुरिति विश्वामित्रऋषिगायत्री छन्दः सविता देवता, विश्वानि देवेति नारायणऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता सन्धुक्षणे विनियोगः।

ॐ भूर्भुवः स्वः। ॐ तासवितुर्व्वरेण्यस्य चित्रामाऽहं व्वृणे सुमतिं व्विश्वजन्याम्। यामस्य कण्वोऽअदुहत् प्रतीनाꣳसहस्त्रधारां पयसा महीं गाम्।

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

ॐ विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्नऽआसुव।।

फिर बाएँ हाथ में तीन कुशा रखे और खड़ा होकर निम्न मन्त्र पढ़कर घी में भीगी हुई तीन समिधाएँ अग्नि में डाले।

पुनस्त्वेति प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दोग्निर्देवता अग्नि समिन्धने विनियोगः।

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धमाम्पुनर्ब्रह्माणो व्वसुनीथ यज्ञैः। घृतेन त्वन्तन्नवं व्वर्धयस्व सत्त्याः सन्तु यजमानस्य कामाः।।

फिर बैठकर जल से अग्नि का पर्युक्षण करे और घृत, दधि, खीर अथवा घृताक्त यव, चावल या तिल आदि से अथवा मधुर फल से निम्नलिखित मन्त्रों द्वारा चार आहुतियाँ दे। (इनमें आरम्भ की दो आहुतियाँ सायंकाल में दी जाती हैं और अन्त की दो आहुतियाँ प्रातःकाल में। सायंकाल से आरम्भ करे। सायंप्रातः मिलकर एक दिन का होम है। सायंकाल में जिस द्रव्य से होम करे उसी से प्रातःकाल भी करे।)

(सायंहोम)

ॐ अग्नेय स्वाहा, इदमग्नये न मम।
ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।।

(प्रातर्होम)

ॐ सूर्याय स्वाहा, इदं सूर्याय न मम।
ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।।

इसके पश्चात् अग्नि की प्रदक्षिणा करके प्रणाम करे और–

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम्।

इस मंत्र से होम के भस्म को क्रमशः ललाट, ग्रीवा दक्षिण बाहुमूल और हृदय में लगावे। 'ॐ देवा गातुविदो' आदि मंत्र के पढ़ने के बाद यह श्लोक पढ़ पर न्यूनता पूर्ति के लिए भगवान् से प्रार्थना करे–

ॐ प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णस्यादिति श्रुतिः।।

और

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्।।

ॐ विष्णवे नमः।।३।।

अन्त में निम्नांकित वाक्य कहकर यह हवन कर्म भगवान् को अर्पण करे–

कृतेनानेन नित्यहोमकर्मणा श्रीपरमेश्वरः प्रीयताम् न मम।

भूतयज्ञ

धाता-विधाता आदि भूताधिष्ठातृ देवताओं के निमित्त अन्न अर्पण करना तथा कृमि, कीट, पतंग, पशु-पक्षी आदि के निमित्त भोज्य पदार्थ समर्पण करना भूतयज्ञ है। इस यज्ञ के द्वारा सम्पूर्ण प्राणियों में व्यापक परमेश्वर का पूजन होता है। पितरों को तृप्ति के लिये 'स्वधा' शब्द के उच्चारणपूर्वक अन्न-जल समर्पण करना पितृयज्ञ है। इससे पितर प्रसन्न होकर अपने आशीर्वाद से प्रसन्न करते हैं। द्वारपर आये हुए अतिथि को अन्नादि से तृप्त करना और सनकादि दिव्य मनुष्यों के निमित्त अन्न समर्पण करना **मनुष्ययज्ञ** है। इससे अतिथिरूपी नारायण की आराधना होती है, जो मानवमात्र के लिए कल्याणकारिणी है।

बलिवैश्वदेव प्रतिदिन एक ही बार होता है। पाक के अभाव में कच्चा अन्न, फल और शाक आदि से भी बलि वैश्वदेव होता है। बलिवैश्वदेव में उड़द, चना, मसूर, कोदो, कुलथी, लवण, मटर, तैल-पक्व, पर्युषित अन्न भुक्तशेष अन्न, आदि वर्जित हैं।

वैश्वदेव के प्रथम अतिथि-अभ्यागत उपस्थित हो जायं तो वैश्वदेवनिमित्त अन्न को पृथक् करके अतिथि को भिक्षा देनी चाहिये। यदि दो भाई परस्पर अलग हो जायं, उनका पाक पृथक् होने लगे तो श्राद्ध और बलिवैश्वदेव भी उन्हें अलग-अलग करने चाहिये। यदि पाक एक ही हो तो उनमें से जो ज्येष्ठ हो उसे ही करना चाहिये। घर में अलग न होने पर भी यदि एक भाई परदेश में रहता हो तो उसे अलग ही श्राद्ध अथवा बलिवैश्वदेव करना चाहिये। नित्य बलिवैश्वदेव करने से मनुष्य के समस्त पाप दूर होते हैं। बलिवेश्वदेव से बचा हुआ अन्न यज्ञ शिष्ट अन्न है। यह अमृत के समान माना गया है। जो केवल अपने लिये भोजन बनाते हैं वे पापभोगी हैं।

बलिवैश्वदेव की विधि इस प्रकार है—पहले आचमन और

प्राणायाम करके दायें हाथ की अनामिका अंगुली में कुश की पवित्री या सोने आदि की अंगूठी पहने तत्पश्चात् निम्नांकित संकल्प करे:-

हरिः ॐ तत्सत्-अद्य पूर्वोच्चारितैवं ग्रहगुणविशेषणादि-विशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ मम गृहे पञ्चसूनाजनितसकलदोष-परिहारपूर्वकं नित्यकर्मानुष्ठानसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं बलिवैश्वदेवाख्यं कर्म करिष्ये।

देवयज्ञ-

इसके बाद लौकिक अग्नि प्रज्ज्वलित करके अग्निदेव का इस मन्त्र को पढ़कर ध्यान करे-

ॐ चत्वारिशृङ्गा त्रयोऽअस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासोऽअस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्याँ २ आविवेश।।

फिर नीचे लिखे मन्त्र को पढ़कर अग्निदेव को मानसिक आसन दे-

ॐ एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः। स एव जातः स जनिष्यमाणाः प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति सर्वतोमुखः।।

तत्पश्चात् अग्निदेव को नमस्कार करके एक पात्र में बिना लवण (लोन) का सुपक्व अन्न रख ले और यज्ञोपवीत को सव्य रखे हुए ही दायें घुटने को पृथ्वी पर टेककर अन्न की पाँच आहुतियां नीचे लिखे पाँच मन्त्रों से दे (अग्नि न हो तो एक पात्र में जल रखकर उसी में आहुतियां छोड़ सकते हैं।)

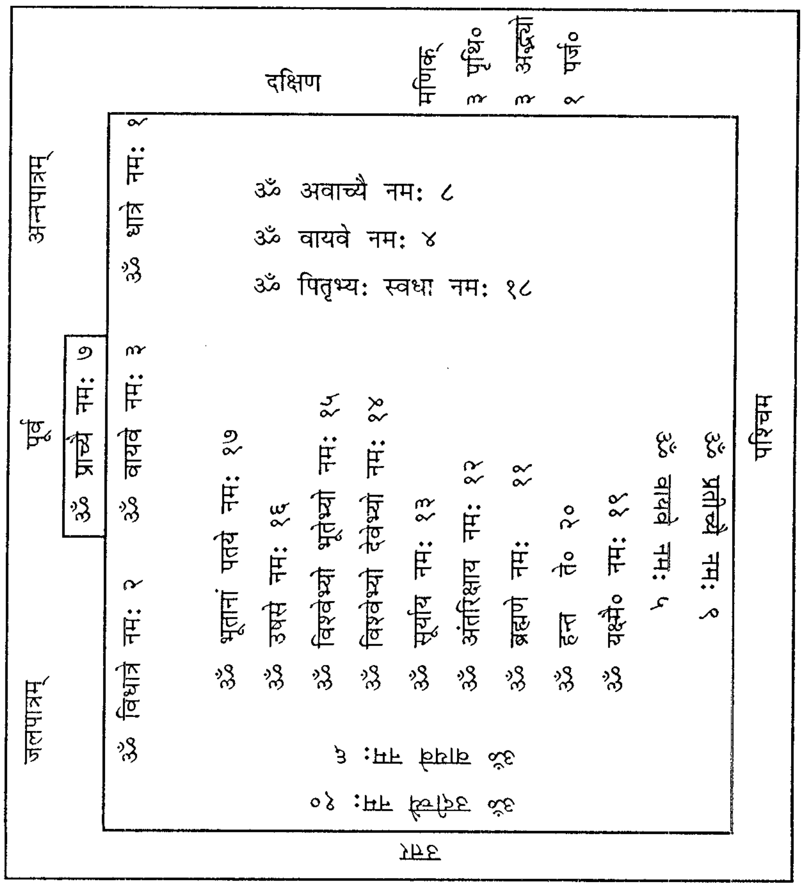
ॐ ब्रह्मणे स्वाहा इदं ब्रह्मणे न मम। ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं०। ॐ गृह्याभ्यः स्वाहा इदं०। ॐ कश्यपाय स्वाहा इदं०। ॐ अनुमतये स्वाहा इदं०।।

पञ्चाहुतियों के साथ कहीं इन आहुतियों का भी विधान मिलता है-

ॐ भूः स्वाहा इदमग्नये न मम। ॐ भुवः स्वाहा इदं वायवे न मम। ॐ स्वः स्वाहा इदं सूर्याय न मम। ॐ भूर्भुः स्वः स्वाहा इदं प्रजापतये न मम। ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इदमग्नये स्विष्टकृते न मम।

भूतयज्ञ

अग्नि के पास ही पानी से चौक बनाए, उसका द्वार पूर्व की ओर रखे और उसी में निर्दिष्ट स्थानों पर क्रमशः बीस अन्न ग्रास देने चाहिये। नकशा और ग्रास अर्पण करने के मन्त्र नीचे दिये जाते हैं। एक-एक मन्त्र पढ़कर एक-एक ग्रास अर्पण करना चाहियेः—



पितृयज्ञ

यज्ञोपर्वीत को अपसव्य करके बायें घुटने को पृथ्वी पर रख कर दक्षिण की ओर मुख करके हाथ में तिल लेकर, पक्व अन्न अंकित मण्डल में निर्दिष्ट स्थान पर मन्त्र पढ़ कर रख दें।

फिर यज्ञोपवीत को सव्य करके अन्न के पात्र को धोकर वह जल अंकित मण्डल में १९ वें अंक की जगह मन्त्र पढ कर छोड़ दे।

"ॐ यक्ष्मैतत्ते निर्णेजने नमः," इदं यक्ष्मणे न मम।

मनुष्ययज्ञ–

ॐ हन्त ते सनकादिमनुष्येभ्यो नमः,
इदं हन्त ते सनकादिमनुष्येभ्यो न मम।

१. गोग्रास–

इसके बाद निम्नांकित मन्त्र पढ़ते हुए गोग्रास अर्पण करेः–

ॐ सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः।
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः।।
इदं गोभ्यो न मम।

२. श्वानग्रास–

फिर यज्ञोपवीत को कण्ठ में माला की भाँति करके कुत्तों के लिए ग्रास दे

ॐ द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ।
ताभ्यामन्नं प्रयच्छामि स्यातामेतावहिंसकौ।।
इदं श्वभ्यः न मम।

३. काकग्रास–

पुनः यज्ञोपवीत को अपसव्य करके नीचे लिखे मन्त्र को पढ़ते

हुए कौओं के लिए भूमि पर ग्रास दे:—

ॐ ऐन्द्रवारुणवायव्या याम्या वै नैऋतास्तथा।
वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं मयोज्झितम्॥
इदं वायसेभ्यो न मम।

४. देवादिग्रास

फिर सव्यभाव से निम्नांकित मन्त्र पढ़कर देवता आदि के लिए अन्न अर्पण करे—

ॐ देवा मनुष्याः पशवो वयांसि, सिद्धाः सयक्षोरगदैत्यसंघाः।
प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम्।।
इदमन्नं देवादिभ्यो न मम।

५. पिपीलिकादिग्रास

इसी प्रकार आगे दिए हुए मन्त्र से चीटीं आदि के लिए अन्न दे—

ॐ पिपीलिकाः कीटपतंगकाद्या बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः।
तेषां हि तृप्त्यर्थमिदं मयान्नं तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु।।
इदमन्नं पिपीलिकादिभ्यो न मम।

तदनन्तर हाथ धोकर भस्म लगावे और निन्नांकित मन्त्र से अग्नि का विसर्जन करे—

ॐ यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा।
एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः सर्ववीरस्तं जुषस्व स्वाहा।।

गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थानं परमेश्वर।
यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र गच्छ हुताशन॥

तत्पश्चात् कर्म की न्यूनता की पूर्ति के लिए निम्नांकित श्लोकों से प्रार्थना करे—

ॐ प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः।।
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्।।
ॐ विष्णवे नमः।।३।।

फिर नीचे लिखे पाठ को पढ़कर यज्ञ कर्म भगवान् को अर्पण करे—

अनेन वैश्वदेवाख्येन कर्मणा श्रीयज्ञनारायणस्वरूपी परमेश्वरवासुदेवः प्रीयतां न मम। ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु। ॐ विष्णवे नमः।।३।।

चतुर्थ-अंशु

देवार्चन आदि

देवार्चन

सन्ध्या आदि के बाद हमारे घरों में अपने इष्टदेव और शिव, विष्णु, भगवती दुर्गा तथा गणेश और सूर्य पंचायतन या पञ्चदेवों की षोडषोपचार अर्थात् १६ प्रकार की पूजा सामग्रियों से पूजा की जाती है। पूजा की विधि यह है:-

पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके भगवान् के सामने पवित्र आसन पर बैठ कर अपने बाँए कलश और दाएँ गन्धपुष्प धूपदीप नैवेद्य आदि वस्तुएँ सजाकर रख ले। सन्ध्या में बताई गई विधि के अनुसार आचमन और प्राणायाम करे। तत्पश्चात् निम्नांकित मन्त्र का पाठ करे-

ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।।
स्वस्ति नस्ताक्ष्यो्ऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।

फिर संकल्प करके 'गंगे च यमुने चैव' इत्यादि मन्त्र से कलश में तीर्थों का आवाहन करे और-

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः।
मुखे तस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः।।

कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः।।

अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशन्तु समाश्रिताः।
ॐ कलशाय नमः।।

अस्मिन् कलशे वरुणं सांगं सपरिवारं सशक्तिकमा-
वाहयामि स्थापयामि।

सर्वोपचारार्थे गंधाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि। नमस्करोमि।।

कहकर अनामिका से कलश का स्पर्श कर 'वरुणाय नमः कहकर उसी कलश से जल लेकर 'ॐ अपवित्रः पवित्रो वा' आदि मंत्र से पूजा सामग्री और अपने ऊपर जल के छींटे देकर शंख बजाए। फिर दाएँ रखे हुए जलपात्र से उसे धोकर उसे अपने स्थान पर रख दे। इसके बाद पूजा में यदि शंख हो तो–

त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतो करे।
निर्मितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य नमोस्तुते।।

इस मंत्र से शंख की पूजा और प्रार्थना करे।

आगमार्थं तु देवानां गमानार्थं तु राक्षसाम्।
कुरु घंटे महानादं देवताह्लादकारणम्।।

इस मंत्र से घंटी बजाए। और तब गणेश, शिव, विष्णु आदि देवों का ध्यान और नमस्कार करे।

तत्पश्चात् दीपक जलाकर गन्ध-पुष्पादि से पूजन करे। इसके बाद निम्न १६ उपचारों से भगवान् की पूजा करे–

मंत्र के अन्त में उस देवता के नाम मंत्र जैसे ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवाय नमः, श्रीविष्णवे नमः, श्रीसूर्याय नमः, श्रीदुर्गायै नमः श्रीगणेशाय नमः कहकर उपचार अर्पित करे।

वैदिक (पुरुषसूक्त के) मन्त्रों के साथ पौराणिक मन्त्रों से भी पूजन किया जाता है। अथवा सर्व-साधारण पौराणिक मन्त्रों से ही देवता का षोडशोपचार पूजन सम्पन्न कर सकते हैं। षोडशोपचार ये हैं–

१. आवाहन, २. आसन, ३. पाद्य, ४. अर्घ्य, ५. आचमन, ६. स्नान, ७. वस्त्र ८. यज्ञोपवीत, ९. गन्धाक्षत, १०. पुष्प-तुलसी-दलादि ११. धूप, १२. दीप, १३. नैवेद्य और आचमन, १४. दक्षिणायुक्त ताम्बूल, १५. आरार्तिपूर्वक परिक्रमा और १६. पुष्पाञ्जलि व नमस्कार।

'प्रतिमायां जले वह्नौ नावाहनविसर्जने।'

इसके अनुसार आवाहन को छोड़कर शेष पूजा की जाए।

यहां भगवान् शंकर के पूजन की विधि दी जा रही है। भगवान् विष्णु तथा भगवती दुर्गा आदि का पूजन भी इन्ही मंत्रों से किया जाता है। केवल 'शंकराय नमः' के स्थान पर विष्णवे नमः, दुर्गायै नमः आदि कर देना चाहिए। भगवान् विष्णु पर बिल्वपत्र के स्थान पर तुलसी चढ़ाई जाती है यहाँ उनके मंत्र आदि अलग दे दिये हैं।

घर में पञ्चदेवों की स्थापना और पूजा की जाए तो अपने इष्टदेव या प्रमुख उपास्य देव को मध्य में और चारों देवों की अगले पृष्ठ पर दिए गए चित्र के अनुसार यथास्थान स्थापित करना चाहिए।

पञ्चायतनदेवतास्थान

(१) श्रीशिवपञ्चायतनम्			(२) श्रीविष्णुपञ्चायतनम्		
विष्णु		सूर्य	शिव		गणेश
	शिव			विष्णु	
देवी		गणेश	देवी		सूर्य
(३) श्रीसूर्यपञ्चायतनम्			**(४) श्रीदेवीपञ्चायतनम्**		
शिव		गणेश	विष्णु		शिव
	सूर्य			देवी	
देवी		विष्णु	सूर्य		गणेश

(५) श्रीगणेशपञ्चायतनम्		
विष्णु		शिव
	गणेश	
देवी		सूर्य

स जयति सिन्धुरवदनो देवो यत्पादपङ्कजस्मरणम्।
वासरमणिरिव तमसां राशीन्नाशयति विघ्नानाम्।।१।।

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः।।२।।

धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्दो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि।।३।।

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते।।४।।

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये।।५।।

श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।

उन गजवदन देवदेवकी जय हो, जिनके चरणकमल का स्मरण सम्पूर्ण विघ्नसमूह को इस प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे सूर्य अन्धकार-राशि को।।१।। जो पुरुष विद्यारम्भ, विवाह, गृहप्रवेश, निर्गमन (घर से बाहर जाने), संग्राम अथवा संकट के समय सुमुख, एकदन्त, कपिल, गजकर्ण, लम्बोदर, विकट विघ्ननाशन, विनायक धूम्रकेतु, गणाध्यक्ष, भालचन्द्र और गजानन–इन बारह नामों का पाठ या श्रवण भी करता है, उसे किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता।।२-४।। जो श्वेत वस्त्र धारण किये हैं, चन्द्रमा के समान जिनका वर्ण है तथा जो प्रसन्नवदन हैं, उन देवदेव चतुर्भुज भगवान् विष्णु का सब विघ्नों की निवृत्ति के लिये ध्यान करना चाहिए।।५।।

पूर्वोक्त प्रकार से सर्व प्रथम गणेशजी का स्मरण करना चाहिए। तब निम्न प्रकार से संकल्प करेः–

संकल्प–विष्णुर्विष्णुर्ष्णिुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे भारतवर्षे (भरतखण्डे)जम्बुद्वीपे अस्मिन्वर्तमाने अमुकनामसंवत्सरे अमुकाऽयने अमुकर्तौ अमुकमासे अमुकपक्षे

अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुकराशिस्थिते श्रीसूर्ये अमुकराशिस्थिते देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथायथं राशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवंगुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ ममाऽत्मनः श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त-फलप्राप्त्यर्थम् इह जन्मनि जन्मान्तरे वा सकलदुरितोपशमनार्थं तथा मम सभार्यस्य सपुत्रस्य सबान्धवस्य अखिलकुटुम्बसहितस्य सपशोः समस्तभय-व्याधिरापीडामृत्युपरिहारद्वारा आयुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्ध्यर्थम् आधिदैविकाऽधि भौतिकाऽध्यात्मिकत्रिविधतापोपशमनार्थं धर्मार्थकाममोक्षफलावाप्त्यर्थं च ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीअमुकपञ्चायतनदेवताप्रीत्यर्थं यथाज्ञानेन यथामिलितोपचारद्रव्यैः पुरुषसूक्तेन ध्यानावाहनादिषोडशोपचारैः पूजनमहं करिष्ये।

सर्व प्रथम धूप दीप जला ले। दीप प्रज्वलित करते समय यह मन्त्र पढ़े:—

भक्त्या दीपं प्रयच्छामि देवाय परमात्मने।
त्राहि मां निरयाद्घोराद्दीपज्योतिर्नमोऽस्तु ते।।

ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निꣳ स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिꣳसूर्यꣳ स्वाहा अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चꣳ स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चꣳस्वाहा। ज्योतिꣳसूर्यꣳ सूर्यो ज्योतिꣳस्वाहा। ॐ भूर्भुवः स्वः दीपस्थदेवतायै नमः आवाहयामि। सर्वोपचारार्थं गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि नमस्करोमि।

तब पञ्चायतन देवों का ध्यान इन मंत्रों से करे:—

श्रीशिवध्यानम्—

ॐ ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं,
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं,
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्।।

श्रीविष्णुध्यानम्—

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं,
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।

लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं,
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्।।

श्रीसूर्यध्यानम्

ॐ ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती,
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।
केयूरवान्मकरकुण्डलवान्किरीटी,
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशंखचक्रः।।

श्रीगणपतिध्यानम्

श्वेताङ्गं श्वेतवस्त्रं सितकुसुमगणैः पूजितं श्वेतगन्धैः,
क्षीराब्धौ रत्नदीपैः सुरनरतिलकं रत्नसिंहासनस्थम्।
दोर्भिः पाशांकुशाब्जाभयवरमनसं चन्द्रमौलिं त्रिनेत्रं,
ध्यायेच्छान्त्यर्थमीशं गणपतिममलं श्रीसमेतं प्रसन्नम्।।

श्रीदेवीध्यानम्

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां,
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं,
विभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे।।

ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतन-
देवताभ्यो नमः ध्यायामि।
(आवाहनाभावे पुष्पाञ्जल्यर्पणम्)।

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
सभूमि ँ सर्व्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।

आगच्छ देवदेवेश, तेजोराशे जगत्पते।
क्रियमाणां मया पूजां गृहाण सुरसत्तम।।

षोडशोपचारपूजन–

सर्वप्रथम भगवान् को पुष्प का आसन अर्पित करे–

ॐ पुरुषऽएवेदꣳसर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्,
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।
रम्यं सुशोभनं दिव्यं सर्वसौख्यौकरं शुभम्।
आसनं च मया दत्तं गृहाण परमेश्वर।।
ॐ इदमासनं समर्पयामि भगवते श्रीशंकराय नमः।

फिर निम्न मन्त्र का उच्चारण कर भगवान् के चरणकमलों को धोकर उस जल को अपने मस्तक पर धारण करना चाहिये–

ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः,
पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि।
उष्णोदकं निर्मलं च सर्वसौगन्ध्यसंयुतम्।
पादप्रक्षालनार्थाय दत्तं ते प्रतिगृह्यताम्।
ॐपाद्यं समर्पयामि भगवते श्रीशंकराय नमः।

फिर निम्न मन्त्र को पढ़कर भगवान् के कर-कमलों में अर्घ्य-पवित्र जल छोड़ना चाहिए–

ॐ त्रिपादूर्द्धवऽउदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः,
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशनेऽअभि।
अर्घ्यं गृहाण देवेश गन्धपुष्पाक्षतैः सह।
करुणाकर मे देव गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते।।
ॐ हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि श्रीशकंराय नमः।

फिर यह मन्त्र कहकर भगवान् को आचमन करना चाहिए–

ॐ ततो विराडजायत विराजोऽअधि पूरुषः,
सजातोऽअत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः।।

सर्वतीर्थसमायुक्तं सुगन्धिं निर्मलं जलम्।
आचम्यतां मया दत्तं गृहीत्वा परमेश्वर।।
ॐ आचमनीयं समर्पयामि भगवते श्रीशंकराय नमः।

फिर निम्न मन्त्र कहकर भगवान् को शुद्ध जल से स्नान कराए–

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्व्वहुतः सम्भृतम्पृषदाज्यम्,
पशूंस्ताँश्चक्रेव्वायव्व्यानारायण्याग्ग्राम्याश्च ये।

ॐ गङ्गासरस्वतीरेवापयोष्णीनर्मदाजलैः।
स्नापितोऽसि मया देव तथा शान्तिं कुरुष्व मे।।
ॐ स्नानार्थं जलं समर्पयामि श्रीशंकराय नमः।

फिर यह मन्त्र पढ़कर पहले पञ्चामृत से फिर शुद्ध जल से भगवान् को स्नान करावे–

ॐ पञ्च नद्यः॑ सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः॑
सरस्वती तु पञ्चधा सोदेशेऽभवत्सरित्।।
पयो दधि घृतं चैव मधु च शर्करायुतम्।
पञ्चामृतं मया नीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।
ॐपञ्चामृतेन पश्चाच्छुद्धोदकेन स्नापयामि भगवते श्रीशंकराय नमः।

यह मन्त्र कह कर भगवान् को वस्त्र अर्पण करेः–

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्व्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे,
छन्दाः॑सि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।

सर्वभूषाधिके सौम्ये लोकलज्जानिवारणे।
मयाप्रपादिते तुभ्यं गृह्यतां वाससी शुभे।।
ॐ वस्त्रं समर्पयामि भगवते श्रीशंकराय नमः।

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र पढ़कर भगवान् को यज्ञोपवीत या उसके स्थान पर अक्षत चढ़ाए–

ॐ तस्मादश्वाऽअजायन्त ये के चोभयादतः,
गावोह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाताऽअजावयः।

नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम्।
उपवीतं चोत्तरीयं गृहाण परमेश्वर।।
ॐ यज्ञोपवीतं समर्पयामि भगवते श्रीशंकराय नमः।

फिर निम्न मन्त्र पढ़कर भगवान् को चन्दन-रोली आदि लगाना चाहिए—

ॐ तं व्यज्ञं वर्हिषि प्रोक्षन्पुरुषञ्जातमग्रतः।
तेन देवाऽअयजन्त साध्याऽऋषयश्च ये।।

श्रीखण्डचन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम्।।
ॐ गन्धं समर्पयामि भगवते श्रीशंकराय नमः।

(यह मन्त्र पढ़कर भगवान् को अक्षत चढ़ाए—

ॐ अक्षन्नमीमदन्त ह्यवप्रियाऽअधूषत।
अस्तोषत स्वाभानवो व्विप्रान
विष्ठयामतीयोजान्निवन्द्र ते हरी।

अक्षताँश्च सुरश्रेष्ठ कुंकुमाक्ताः सुशोभिताः।
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर।।
ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवायः नमः अक्षतान्समर्पयामि।

फिर यह मन्त्र कहकर भगवान् के मस्तक पर और नासिका के सामने आकाश में पुष्प छोड़ना तथा भगवान् को माला पहनानी चाहिए—

ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्,
मुखं किमस्यासीत् किम्बाहू किमूरू पादाऽउच्येते।

माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो।
मयाहृतानि पूजार्थं पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम्।।

ॐ पुष्पाणि समर्पयामि भगवते श्रीशंकराय नमः।

फिर भगवान् शंकर पर बिल्वपत्र और विष्णु पर तुलसी दल भेट करें। बिल्वपत्र चढ़ाने का मन्त्र यह है–

त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रयायुधम्।
त्रिजन्मपापसंहारमेकबिल्वं शिवार्पणम्।।
ॐ बिल्वपत्रं समर्पयामि भगवते श्रीशंकराय नमः।

भगवान् विष्णु की पूजा करते समय निम्न मन्त्र से तुलसीदल चढ़ाए–

तुलसी हेमरूपां च रत्नरूपां च मञ्जरीम्।
भवमोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयामि हरिप्रियाम्।।
ॐ तुलसीदलं निवेदयामि भगवते श्रीविष्णवे नमः।

फिर यह मन्त्र पढ़कर भगवान् को धूप दे–

ॐ ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः,
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याशूद्रोअजायत।

वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।
ॐ धूपमाघ्रापयामि भगवते श्रीशंकराय नमः।

फिर यह मन्त्र पढ़कर घी का दीपक भगवान् के आगे रखना चाहिए–

ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत,
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत।

आज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया।
दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापह।।
ॐ दीपं दर्शयामि भगवते श्रीशंकराय नमः।

फिर निम्न मन्त्र से मिश्री, मिठाई और फल आदि भगवान् को नैवेद्य लगाए–

ॐ नाभ्याऽआसीदन्तरिक्ष ँ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत,
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँन्अकल्पयन्।

शर्कराघृतसंयुक्तं मधुरं स्वादु चोत्तमम्।
उपहारसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्।।
ॐ नैवेद्यं समर्पयामि भगवते श्रीशंकराय नमः।

फिर पूर्वोक्त मन्त्र से भगवान् को आचमन कराना चाहिये।

फिर यह मन्त्र पढ़कर इलायची, लवंग और कपूर आदि सहित ताम्बूल भगवान् को अर्पण करे–

पूगीफलं महद् दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम्।
एलाचूर्णादिसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्।।
ॐ ताम्बूलं समर्पयामि श्रीशंकराय नमः।

फिर यह मन्त्र पढ़कर भगवान् पर दक्षिणा चढ़ाए–

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे।।

फिर पृष्ठ ९८ पर दिए मन्त्र से प्रदक्षिणा कर नमस्कार करे–

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत,
व्वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्ग्रीष्मऽइध्मः शरद्धविः।

फिर किसी शुद्ध पात्र में घृत की बत्ती या कपूर को प्रदीप्त करके भगवान् की आरती उतारनी चाहिये।

आरती-विधि–

विशेष–आरती क्या है और विधिपूर्वक आरती कैसे की जाए इस सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातें समझ लेनी चाहिए।

आरती को 'आरात्रिक' अथवा 'आरार्तिक' और 'नीराजन' भी कहते हैं। नीराजन का अर्थ है–निश्शेषेण राजनम् प्रकाशनम् अर्थात् देवविग्रह को विशेषरूप से भलीभांति प्रकाशित करना। पूजा के अन्त में आरती की जाती है पूजन में जो त्रुटि रह जाती है, आरती से

उसकी पूर्ति होती है। स्कन्दपुराण में कहा गया है–

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं यत् कृतं पूजनं हरेः।
सर्वं सम्पूर्णतामेति कृते नीराजने शिवे।।

पूजन मन्त्रहीन और क्रियाहीन होने पर भी नीराजन (आरती) कर लेने से उसमें सारी पूर्णता आ जाती है।

विष्णुधर्मोत्तर में आया है–

धूपं चारात्रिकं पश्येत् कराभ्यां च प्रवन्दते।।
कुलकोटिं समुद्धृत्य याति विष्णोः परं पदम्।।

जो धूप और आरती को देखता है और दोनों हाथों से आरती लेता है, वह करोड़ पीढ़ियों का उद्धार करता है और भगवान् विष्णु के परमपद को प्राप्त होता है।

आरती में पहले मूलमन्त्र (जिस देवता का जिस मन्त्र से पूजन किया गया हो, उस मन्त्र) के द्वारा तीन बार पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये और ढोल, नगारे, शंख, घड़ियाल आदि महावाद्यों के तथा जय-जयकार शब्द के साथ शुभ पात्र में घृत से या कपूर से विषम संख्या की अनेक बत्तियाँ जलाकर आरती करनी चाहिये।

ततश्च मूलमन्त्रेण दत्त्वा पुष्पाञ्जलित्रयम्।
महानीराजनं कुर्यान्महावाद्यजयस्वनैः।।
प्रज्वालयेत् तदर्थं च कर्पूरेण घृतेन वा।
आरात्रिकं शुभे पात्रे विषमानेकवर्तिकम्।।

साधारणतः पाँच बत्तियों से आरती की जाती है। इसे 'पञ्चप्रदीप' भी कहते हैं। एक, सात या उससे भी अधिक बत्तियों से आरती की जाती है। कपूर से भी आरती होती है। पद्मपुराण में आया है–

कुङ्कमागुरुकर्पूरघृतचन्दननिर्मिताः।
वर्तिकाः सप्त वा पञ्च कृत्वा वा दीपवर्त्तिकाम्।।
कुर्यात् सप्तप्रदीपेन शंखघण्टादिवाद्यकैः।

कुंकुम, अगर, कपूर, घृत और चन्दन की सात या पाँच बत्तियाँ बनाकर अथवा दिये की (रूई और घी की) बत्तियाँ बनाकर सात बत्तियों से शंख, घण्टा आदि बाजे बजाते हुए आरती करनी चाहिये।

आरती के पाँच अङ्ग होते हैं

पञ्च नीराजनं कुर्यात् प्रथमं दीपमालया।
द्वितीयं सोदकाब्जेन तृतीयं धौतवाससा।।
चूताश्वत्थादिपत्रैश्च चतुर्थं परिकीर्तितम्।
पञ्चमं प्रणिपातेन साष्टाङ्गेन यथाविधि।।

प्रथम दीपमाला के द्वारा, दूसरे जलयुक्त शंख से, तीसरे धूले हुए वस्त्र से, चौथे आम और पीपल आदि के पत्तों से और पाँचवें साष्टाङ्ग दण्डवत् से आरती करे।

आदौ चतुः पादतले च विष्णो-
र्द्वौ नाभिदेशे मुखबिम्ब एकम्।
सर्वेषु चाङ्गेषु च सप्तवारा-
नारात्रिकं भक्तजनस्तु कुर्यात्।।

आरती उतारते समय सर्वप्रथम भगवान् की प्रतिमा के चरणों में उसे चार बार, नाभि-देश में दो बार, एक बार मुख मण्डल पर और सात बार समस्त अङ्गों पर घुमाये।

प्रदक्षिणा—

फिर निम्न मन्त्र पढ़कर भगवान् की प्रदक्षिणा करे—

ॐ सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिसप्तसमिधः कृताः,
देवा यद्यज्ञन्तन्वाना अबध्नन्पुरुषम्पशुम्।

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणा पदे पदे।।

मन्त्र-पुष्पाञ्जलि—

फिर निम्न मन्त्र पढ़कर सुन्दर सुगन्धित पुष्पों से अञ्जलि भरकर

भगवान् पर चढ़ाए और साष्टांग प्रणाम करे–

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् तेह नाकम्महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः। राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने, नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे स मे कामान्कामकामाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणाय ददातु कुबेराय वैश्रवणाय राजाधिराजाय महाराजाय नमः ॐ स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्य राज्यं माहाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायै स्यात् सार्वभौमः सार्वायुष आन्तादापरार्धात् पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति तदप्येष श्लोकोऽभिगीतो मरुतः, परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे आविक्षितश्च कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासद इति विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो, विश्वतो वाहुरुत विश्वतस्पात् संबाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः।

ॐ नमः सर्वहितार्थाय जगदाधारहेतवे।
साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्ते प्रयत्नेन मया कृतः।

ॐ कर्पूरगौरं करुणावतारं, संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे, भवं भवानीसहितं नमामि।।१।।

वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं,
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम्।
वन्दे सूर्यशशांकवाह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं,
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शंकरम्।।२।।

शान्तं पद्मासनस्थं शशधरमुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं,
शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षभागे वहन्तम्।
नागं पाशं च घंटां डमरुकसहितं सांकुशं वामभागे,
नानालंकारयुक्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि।।३।।

आवाहनं न जानामि न जानामि तवार्चनम्।
पूजां चैव न जानामि क्षमस्व परमेश्वर।।
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।

तस्मात्कारुण्यभावेन रक्षस्व परमेश्वर।।

अपराधो भवत्येव सेवकस्य पदे पदे।
कोऽपरः सहतां लोके केवलं स्वामिनं विना।।

भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम्।
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं मम।।

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे।।

यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनञ्च यद्भवेत्।
क्षन्तुमर्हसि देवेश कस्य न स्खलितं मनः।।

इसके बाद शंख के जल को अपने ऊपर तथा उपस्थित सब लोगों पर छिड़के—

शंखमध्ये स्थितं तोयं भ्रामितं केशवोपरि।
अङ्गलग्नं मुनष्याणां ब्रह्महत्यां व्यपोहति।।

अन्त में निम्नलिखित मंत्र पढ़कर चरणामृत ले—

ॐ अकालमृत्युहरणं सर्वं व्याधिविनाशनम्।
देव (विष्णोः) पादोदकं पीत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।

विशेषः—पूजा समाप्ति के पश्चात् देवताओं की कितनी प्रदक्षिणा की जाए, इस सम्बन्ध में लिखा है कि—

एका चण्ड्या रवेः सप्त तिस्रः कार्या विनायके।
हरेश्चतस्रः कर्तव्या शिवस्यार्धप्रदक्षिणा।।

भगवती दुर्गा की एक बार, सूर्य-प्रतिमा की सात बार, गणेश जी की तीन बार, भगवान् विष्णु की चार बार और शंकर जी की आधी प्रदक्षिणा करनी चाहिये।

साथ ही यह भी कि षोडशोपचार के रूप में भी दक्षिणा के साथ प्रदक्षिणा का विधान है और पुष्पाञ्जलि के बाद भी भगवान् की प्रदक्षिणा की जाती है।

महामृत्युञ्जय-जप विधि–

गायत्रीमंत्र-जप के साथ यदि महामृत्युंजय मंत्र का जप भी नित्य किया जाय तो इससे नानाविध आधि-व्याधि का नाश होकर आयुरारोग्य की वृद्धि और परमकल्याण की प्राप्ति होती है। महामृत्युंजय की विधि यह है–

संकल्प–

पहले पृष्ठ ९४ पर दिए गए संकल्प को 'मोक्षफलावप्त्यर्थं' तक पढ़कर अन्त में कहें कि–

श्री भगवान् महामृत्युंजय देवता प्रीत्यर्थं महामृत्युंजयमंत्रस्य' अमुक (एकशत, पञ्चाशत, एकसहस्र) संख्याकं जपं करिष्ये। तदादौ न्यासादिकं च करिष्ये।

ॐ–अस्य श्रीमहामृत्युंजयमन्त्रस्य वसिष्ठऋषिः अनुष्टुप्छन्दः श्रीत्र्यम्बकरुद्रो देवता श्रीं बीजं ह्रीं शक्तिः सर्वारिष्टनिवृत्तिपूर्वकसकल-मनोरथसिद्ध्यर्थेजपे विनियोगः।

अथ ऋष्यादिन्यासः–

ॐवसिष्ठऋषये नमः शिरसि। अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे। श्रीत्र्यम्बकरुद्रदेवतायै नमः हृदये। श्रीं बीजाय नमः गुह्ये। ह्रीं शक्तये नमः पादयोः।

ॐ हौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वं त्र्यम्बकं ॐ नमो भगवते रुद्राय शूलपाणये स्वाहा अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ हौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः यजामहे ॐ नमो भगवते रुद्राय अमृतमूर्तये मां जीवय जीवय तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ हौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम् ॐ नमो भगवते रुद्राय चन्द्रशिरसे जटिने स्वाहा मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ हौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः उर्व्वारुकमिव बन्धनात् ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिपुरान्तकाय ह्रां ह्रीं अनामिकाभ्यां हुँ। ॐ हौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः मृत्योर्मुक्षीय ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिलोचनाय ऋग्यजुःसाममन्त्राय

कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्। ॐ हौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः मामृतात् ॐ नमो भगवते रुद्राय अग्नित्रयाय ज्वल ज्वल मां रक्ष रक्ष अघोरास्त्राय करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादि० ॐ हौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं ॐ नमो भगवते रुद्राय शूलपाणये स्वाहा हृदयाय नमः। ॐ हौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः यजामहे ॐ नमो भगवते रुद्राय अमृतमूर्त्तये मां जीवय जीवय शिरसे स्वाहा। ॐ हौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम् ॐ नमो भगवते रुद्राय चन्द्रशिरसे जटिने स्वाहा शिखायै वषट्। ॐ हौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः उर्व्वारुकमिव बन्ध नात् ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिपुरान्तकाय ह्रीं ह्रीं कवचाय हुँ। ॐ हौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः मृत्योर्मुक्षीय ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिलोचनाय ऋग्यजुःसाममन्त्राय नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ हौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः मामृतात् ॐ नमो भगवते रुद्राय अग्नित्रयाय ज्वल ज्वल मां रक्ष रक्ष अघोरास्त्राय अस्त्राय फट्।

अथ वर्णन्यासः—

ॐ त्र्यं नमः दक्षिणचरणाग्रे। बं नमः कं नमः यं नमः जां नमः दक्षिणचरणसन्धिचतुष्केषु। मं नमः वामचरणाग्रे। हें नमः सुं नमः गं नमः धिं नमः वामचरणसन्धिचतुष्केषु। पुं नमः गुह्ये। ष्टिं नमः आधारे। वं नमः जठरे। र्द्धं नमः हृदये। नं नमः कण्ठे। ॐ उं नमः दक्षिणकराग्रे। वां नमः रुं नमः कं नमः मिं नमः दक्षिणकरसन्धिचतुष्केषु। वं नमः वामकराग्रे। वं नमः धं नमः नां नमः मृं नमः वामकरसन्धि चतुष्के। त्यों नमः वदने। मुं नमः ओष्ठयोः। क्षीं नमः घ्राणयोः। यं नमः दृशोः। मां नमः श्रवणयोः। मृं नमः भ्रुवोः। तां नमः शिरसि।

अथ पदन्यासः—

त्र्यम्बकं शिरसि। यजामहे भ्रुवोः। सुगन्धिं दृशोः। पुष्टिवर्द्धनम् मुखे। उर्व्वारुकं कण्ठे। इव हृदये। बन्धनात् उदरे। मृत्योः गुह्ये। मुक्षीय उर्व्वोः। मां जान्वोः। अमृतात् पादयोः।।

तब भगवान् महामृत्युंजय का ध्यान निम्न मंत्र से करे—

ॐ हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो,
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाऽक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।

अंकन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलाशकान्तं शिवम्,
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकटाभान्तं त्रिनेत्रं भजे।।

मृत्युञ्जय महारुद्र त्राहि मां शरणागतम्।
जन्ममृत्युजरारोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः।।

तावकस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड।
इति विज्ञाप्य देवेशं जपेन्मन्त्रञ्च त्र्यम्बकम्।।

फिर भगवान् का मानसोपचार से पूजन कर निम्नलिखति महामृत्युंजय मंत्र का जप करे—

महामृत्युंजय मंत्रः (ॐ अष्टप्रणवयुक्तः द्विपञ्चाशद्वर्णात्मकः)

ॐ हौं ॐ जूँ सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐत्र्यम्बकं यजामहे सुगधिम्पुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॐ स्वर्भुवर्भूः ॐ सः जूँ ॐ हौं ॐ।।

जप-निवेदन—

जप के अन्त में निम्न मंत्र पढ़कर जप निवेदन करे—

ॐ तत्सदद्यमयाकृतः महामृत्युंजय-
मंत्रस्य अमुकसंख्याकजपः श्रीमहामृत्युंजयार्पणमस्तु।

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणस्मत्कृतं जपम्,
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर।।

ॐ असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरुवर-शाखा लेखिनी पत्रमुर्वी।।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालम्,
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति।।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देव देव।।

महामृत्युञ्जयध्यानम्

हस्ताम्भोज-युगस्थ-कुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुम्भौ करौ।
अक्ष-स्रग्-मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्द्धस्थचन्द्रं स्रवत्
पीयूषोऽत्र तनुं भजे सगिरिजं मृत्युञ्जयं त्र्यम्बकम्।। १।।

चन्द्रोद्भासित-मूर्द्धजं सुरपतिं पीयूषपात्रं वहद्
हस्ताब्जेन दधत् सुदिव्यममलं हास्याय पङ्केरुहम्।
सूर्येन्द्वग्नि-विलोचनं करतले पाशाक्षसूत्राङ्कुशा-
म्भोजं बिभ्रतमक्षयं पशुपतिं मृत्युञ्जयं संस्मरे।। २।।

स्मर्त्तव्याखिललोकवर्त्ति सततं यज्जङ्गमस्थावरं
व्याप्तं येन च यत्प्रपञ्चविहितं मुक्तिश्च यत् सिद्ध्यति।
यद्वा स्यात् प्रणवत्रिभेदगहनं श्रुत्वा च यद् गीयते
तद्वस्तुस्थिति-सिद्धयेऽस्तु वरदं ज्योतिस्त्रयोत्थं महः।। ३।।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मा ऽमृतात्।। ४।।

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्।। ५।।

इति महामृत्युञ्जयध्यानं समाप्तम्

महामृत्युञ्जयस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीमहामृत्युञ्जयस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीमार्कण्डेय ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमृत्युञ्जयो देवता, गौरी शक्तिः, मम सर्वारिष्टसमस्तमृत्युशान्त्यर्थं सकलैश्वर्य-प्राप्त्यर्थं च जपे विनियोगः।

ध्यानम्

चन्द्रर्काग्निविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तःस्थितं
मुद्रापाशमृगाक्ष-सूत्रविलसत्पाणिं हिमांशुप्रभम्।
कोटीन्दु-प्रगलत्सुधाप्लुततनुं हारादिभूषोज्ज्वलं
कान्तं विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावयेत्॥

ॐ रुद्रं पशुपतिं स्थाणुं नीलकण्ठमुमापतिम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति।। १।।

नीलकण्ठं कालमूर्तिं कालज्ञं कालनाशनम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ २॥

नीलकण्ठं विरूपाक्षं निर्मलं निलयप्रभम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ ३॥

वामदेवं महादेवं लोकनाथं जगद्गुरुम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ ४॥

देवदेवं जगन्नाथं देवेशं वृषभध्वजम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ ५॥

गङ्गाधरं महादेवं सर्वाभरणभूषितम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ ६॥

अनाथः परमानन्दं कैवल्यपदगामिनम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ ७॥

स्वर्गापवर्गदातारं सृष्टि-स्थिति-विनाशकम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ ८॥

उत्पत्ति-स्थिति-संहारकर्त्तारमीश्वरं गुरुम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ ९॥

मार्कण्डेयकृतं स्तोत्रं यः पठेच्छिवसन्निधौ।
तस्य मृत्युभयं नास्ति नाऽग्निचौरभयं क्वचित्॥ १०॥

शतावर्तं प्रकर्तव्यं सङ्कटे कष्टनाशनम्।
शुचिर्भूत्वा पठेत् स्तोत्रं सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥ ११॥

मृत्युञ्जय महादेव त्राहि मां शरणागतम्।
जन्म-मृत्युजरा-रोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः॥ १२॥

तावतस्त्वद्‌गतप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड।
इति विज्ञाप्य देवेशं त्र्यम्बकाख्यमनु जपेत्॥ १३॥

नमः शिवाय साम्बाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय योगिनां पतये नमः॥ १४॥

शताङ्गायुर्मन्त्रः—ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं ह्रैं ह्रः हन हन दह दह पच पच गृहाण गृहाण मारय मारय मर्दय मर्दय महामहाभैरव भैरवरूपेण धुनुय धुनुय कम्पय कम्पय विघ्नय विघ्नय विश्वेश्वर क्षोभय क्षोभय कटु कटु मोहय हुंफट् स्वाहा। इति मन्त्रमात्रेण समाभीष्टो भवति॥ २५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मार्कण्डेयकृतं
महामृत्युञ्जयस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

वेदसारशिवस्तवः

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं
गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम्।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्‌गाङ्गवारिं
महादेवमेकं स्मरामि स्मरारिम्॥ १॥

महेशं सुरेशं सुरारार्तिनाशं
विभुं विश्वनाथं विभूत्यङ्गभूषम्।

विरूपाक्षमिन्द्वर्कवह्नित्रिनेत्रं
सदानन्दमीडे प्रभुं पञ्चवक्त्रम्।। २।।

गिरिशं गणेशं गले नीलवर्णं
गवेन्द्राधिरूढं गुणातीतरूपम्।
भवं भास्वरं भस्मना भूषिताङ्गं
भवानीकलत्रं भजे पञ्चवक्त्रम्।। ३।।

शिवाकान्त शम्भो शशाङ्कार्धमौले
महेशान शूलिन् जटाजूटधारिन्।
त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूप
प्रसीद प्रसीद प्रभो पूर्णरूप।। ४।।

परात्मानमेकं जगद्बीजमाद्यं
निरीहं निराकारमोङ्कारवेद्यम्।
यतो जायते पाल्यते येन विश्वं
तमीशं भजे लीयते यत्र विश्वम्।। ५।।

न भूमिर्न चापो न वह्निर्न वायु-
र्न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा।
न ग्रीष्मो न शीतं न देशो न वेषो
न यस्यास्ति मूर्तिस्त्रिमूर्तिं तमीडे।। ६।।

अजं शाश्वतं कारणं कारणानां
शिवं केवलं भासकं भासकानाम्।
तुरीयं तमःपारमाद्यन्तहीनं
प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम्।। ७।।

नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्ते
नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते।
नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य
नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य।। ८।।

प्रभो शूलपाणे विभो विश्वनाथ
महादेव शम्भो महेश त्रिनेत्र।
शिवाकान्त शान्त स्मरारे पुरारे
त्वदन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्यः।। ९।।

शम्भो महेश करुणामय शूलपाणे
गौरीपते पशुपते पशुपाशनाशिन्।
काशीपते करुणया जगदेतदेक-
स्त्वं हंसि पासि विदधासि महेश्वरोऽसि।। १०।।

त्वत्तो जगद्भवति देव भव स्मरारे
त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड विश्वनाथ।
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश
लिङ्गात्मकं हर चराचरविश्वरूपिन्।। ११।।

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतो वेदसारशिवस्तवः सम्पूर्णः।

पञ्चम-अंशु

(परिशिष्ट-आरतियाँ आदि)

श्री गणेश जी की आरती

आरति गजवदन विनायक की।
सुर-मुनि-पूजित गणनायक की।। टेक
एकदंत शशिभाल गजानन।।
विघ्नविनाशक शुभगुण-कानन,
शिवसुत वन्द्यमान-चतुरानन।
दु:खविनाशक सुखदायक की।। सुर०
ऋद्धि-सिद्धि-स्वामी समर्थ अति,
विमल बुद्धि दाता सुविमल-मति,
अघ-वन-दहन, अमल अविगत-गति,
विद्या-विनय-विभव-दायक की।। सुर०
पिङ्गलनयन, विशाल शुंडधर,
धूम्रवर्ण शुचि वज्राकुंश-कर,
लम्बोदर बाधा-विपत्ति-हर,
सुरवन्दित सब विधि लायक की।। सुर०

भगवान् शंकर

ॐ जय गंगाधर जय हर जय गिरिजाधीशा।
त्वं मां पालय नित्यं कृपया जगदीशा।।
हर हर हर महादेव।।

कैलासे गिरिशिखरे कल्पद्रुमविपिने।
गुञ्जति मधुकरपुञ्जे कुञ्जवने गहने।।
कोकिलकूजित-खेलत-हंसावन-ललिता।
रचयति कलाकलापं नृत्यति मुदसहिता।। हर०

तस्मिंल्ललितसुदेशे शाला मणिरचिता।
तन्मध्ये हरनिकटे गौरी मुदसहिता।
क्रीडा रचयति भूषारञ्जित निजमीशम्।
इन्द्रादिक सुर सेवत नामयते शीशम्।। हर०

विबुधवधु बहु नृत्यति हृदये मुदसहिता।
किन्नर गायन कुरुते सप्तस्वर सहिता।।
धिनकतथै थै धिनकत मृदंगं वादयते।
कण कण ललिता वेणुं मधुरं नाटयते।। हर०

रुण रुण चरणे रचयति नूपुरमुज्ज्वलिता।
चक्रावर्ते भ्रमयति कुरुते तां धिक तां।।
तां तां लु चुप तां तां डमरुं वादयते।
अंगुष्ठांगुलिनादं लासकतां कुरुते।। हर०

कर्पूरद्युतिगौरं पञ्चाननसहितम्।
त्रिनयनशशधरमौलिं विषधरकण्ठयुतम्।।
सुन्दरजटाकलापं पावकयुतभालम्।
डमरुत्रिशूलपिनाकं करधृतनृकपालम्।। हर०

मुण्डै रचयति माला पन्नगमुपवीतम्।
वामविभागे गिरिजारूपं अतिललितम्।।
सुन्दरसकलशरीरे कृतभस्माभरणम्।
इति वृषभध्वजरूपं तापत्रयहरणम्।। हर०

शंखनिनादं कृत्वा झल्लरि नादयते।
नीराजयते ब्रह्मा वेदऋचां पठते।।
अतिमृदुचरणसरोजं हृत्कमले धृत्वा।
अवलोकयति महेशं ईशं अभिनत्वा।। हर०

ध्यानं आरति समये हृदये अति कृत्वा।
रामस्त्रिजटानाथं ईशं अभिनत्वा।।
संगीतमेवं प्रतिदिनपठनं यः कुरुते।
शिवसायुज्यं गच्छति भक्त्या यःशृणुते।। हर०

जय शिव ओंकारा

जय शिव ओंकारा, भज शिव ओंकारा।
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव अर्द्धांगी धारा।।
ॐ हर हर महादेव।।

एकानन चतुरानन पञ्चानन राजे।
हंसानन गरुडासन वृषवाहन साजे।। ॐ हर हर०
दो भुज चारु चतुर्भुज अति सोहे।
तीनों रूप निरखता त्रिभुवन-जन मोहे।। ॐ हर हर०
अक्षमाला वनमाला रुंडमाला धारी।
त्रिपुरारी कंसारी करमाली धारी।। ॐ हर हर०
श्वेताम्बर पीताम्बर बाघम्बर अंगे।
सनकादिक गरुडादिक भूतादिक संगे।। ॐ हर हर०
कर मध्ये सुकमण्डलु-चक्र त्रिशूलधारी।
सुखकर्ता दु:खहर्ता जग-पालनकर्ता।। ॐ हर हर०
चौंसठ योगिनी गावत नृत्य करत भैंरूँ।
बाजत ताल मृदंगा, अरु बाजत डमरू।। ॐ हर हर०
काशी में विश्वनाथ विराजे नन्दो ब्रह्मचारी।
नित उठ भोग लगावत, महिमा अतिभारी।। ॐ हर हर०
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव जानत अविवेका।
प्रणवाक्षर में शोभित ये तीनों एका।। ॐ हर हर०
त्रिगुण स्वामी की आरती जो कोई नर गावे।
कहत शिवानन्दस्वामी मनवाञ्छित फल पावे।। ॐ हर हर०

भगवान् जगदीश्वर

ॐ जय जगदीश हरे, प्रभु जय जगदीश हरे।।
भक्तजनों के संकट छन में दूर करे।। ॐ
जो ध्यावे फल पावे, दु:ख बिनसे मन का।। प्रभु०

सुख-सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का।। ॐ

मात-पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किसकी।। प्रभु०
तुम बिन और न दूजा, आस करूँ जिसकी।। ॐ

तु पूरन परमात्मा, तुम अन्तर्यामी।। प्रभु०
पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी।। ॐ

तुम करुणा के सागर, तुम पालन-कर्त्ता।। प्रभु०
मैं मूरख खल कामी, कृपा करो भर्ता।। ॐ

तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपती।। प्रभु०
किस बिधि मिलूं दयामय! तुमको मैं कुमती।। ॐ

दीनबन्धु दुखहर्ता, तुम ठाकुर मेरे।। प्रभु०
अपने हाथ उठाओ, द्वार पड़ा तेरे।। ॐ

विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।। प्रभु०
'श्रद्धा' भक्ति बढ़ाओ, संतन की सेवा।। ॐ

देवी जी की आरती

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य।।

जय जय देवि जयति जय, जय मोहिनिरूपे।
मामिह जननि समुद्धर पतितं भवकूपे।। ध्रुवपदम्
प्रवरातीरनिवासिनि निगमप्रतिपाद्ये
पारावारविहारिणि नारायणि हृद्ये।
प्रपञ्चसारे जगदाधारे श्रीविद्ये
प्रपन्नपालननिरते मुनिवृन्दाराध्ये।। जय जय०

दिव्यसुधाकरवदने कुन्दोज्ज्वलरदने
पदनखनिर्जितमदने मधुकैटभकदने।

विकसितपङ्कजनयने पन्नगपतिशयने
खगपतिवहने गहने सङ्कटवनदहने।। जय जय०

मञ्जीराङ्कितचरणे मणिमुक्ताभरणे
कञ्चुकिवस्त्रावरणे वक्त्राम्बुजधरणे।
शक्रामयभयमहरणे भूसुरसुखकरणे
करुणां कुरु मे शरणे गजनक्रोधरणे।। जय जय०

छित्त्वा राहुग्रीवां पासि त्वं विबुधान्
ददासि मृत्युमनिष्टं पीयूषं विबुधान्।
विदरसि दानवऋद्धन् समरे संसिद्धान्
मध्वमुनीश्वरवरदे पालय संसिद्धान्।। जय जय०

श्री अम्बा जी

ॐ जय अम्बे गौरी मैया जय श्यामा गौरी।
तुमको निशिदिन ध्यावत हरि ब्रह्मा शिव जी।।
जय अम्बे गौरी

माँग सिंदूर विराज़त टीको मृगमद को।
उज्ज्वल से दोउ नैना, चंद्रबदननी को।। जय०

कनक समान कलेवर रक्ताम्बर राजे।
रक्तपुष्प गल माला, कण्ठन पर साजे।। जय०

कानन कुण्डल शोभित, नासाग्रे मोती।
कोटिक चंद्र दिवाकर सम राजत ज्योति।। जय०

शुम्भ निशुम्भ बिदारे, महिषासुर-घाती।
धूम्रविलोचन नैना, निशिदिन मदमाती।। जय०

चौंसठ योगिनि गावत, नृत्य करत भैरूँ।
बाजन ताल मृदंगा औ बाजत डमरू।। जय०

भुजा चार अति शोभित, वर-मुद्रा धारी।
मनवाञ्छित फल पावत, सेवत नर-नारी।। जय०

कंचन थाल बिराजत अगर कपूर बाती।
(श्री) माल केतु में राजत कोटिरतन ज्योति।। जय०

(श्री) अम्बे जी की आरती जो कोई नर गावे।
कहत शिवानन्द स्वामी, सुख सम्पत्ति फल पावे।। जय०
ॐ जय अम्बे गौरी।।

परब्रह्म-वन्दना

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं,
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यं कृतसत्यनेत्रं,
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः।।१।।

नमस्तेसते ते जगत्कारणाय,
नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय।
नमो द्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय,
नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय।।२।।

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं,
त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम्।
त्वमेकं जगत्कर्तृपातृप्रहर्तृ,
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम्।।३।।

भयानां भयं भीषणं भीषणानां,
गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम्।
महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकं,
परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम्।।४।।

वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो,
वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं,
भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः।।५।।

भाव यह है कि–

सत्य जिनका व्रत है, जो सत्यपरायण, तीनों काल में सत्य (भाव) स्वरूप, संसार के उद्भवस्थान और अन्तर्यामीरूप से सत्य (संसार) में निहित हैं तथा सत्य और कृत जिनके नैत्र हैं, उन सत्य के सत्य आप सत्यस्वरूप प्रभु की हम शरण हैं।।१।। हे प्रभो! जगत् के कारणरूप और सत्स्वरूप आप को नमस्कार है, सर्वलोकों के आश्रयभूत ज्ञानस्वरूप आप को नमस्कार है, मोक्षप्रद अद्वैततत्त्वरूप आपको नमस्कार है, शाश्वत और सर्वव्यापी ब्रह्म को नमस्कार है।।२।। आप ही एक शरण लेने योग्य हैं, आप ही एक वरण करने योग्य हैं, आप ही एक जगत् को पालन करने वाले तथा स्वप्रकाशस्वरूप हैं, इस जगत् के कर्ता, रक्षक और संहारक भी आप ही हैं तथा सबके परे निश्चल और निर्विकल्प ब्रह्म भी आप ही हैं।।३।। आप भय को भी भय देने वाले हैं, भीषणों के लिये भी भीषणरूप है, प्राणियों की परम गतिस्वरूप और पवित्र को भी पवित्र करने वाले आप ही हैं, आप सर्वोत्तम पद के नियन्ता, परे के भी परे और रक्षकों के भी रक्षक हैं।।४।। हम एक आप का ही स्मरण करते हैं, आप का ही भजन करते हैं, जगत् के साक्षीरूप एक आप को ही नमस्कार करते हैं, आप ही एकमात्र सत्यस्वरूप हैं, निधान हैं, अवलम्बरहित हैं अर्थात् किसी अन्य के अधीन नहीं हैं, इसलिये संसार-सागर के नौकारूप आप ईश्वर की हम शरण लेते हैं।।५।।

ऋषियों ने बताया

जीवन ऐसा हो

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।।

वेद का अध्ययन कराकर आचार्य शिष्य को शिक्षा देते हैं– सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय से प्रमाद मत करो, आचार्य के लिये प्रिय धन लाकर दो, प्रजातन्तु (संतान-परम्परा) का विच्छेद मत करो, सत्य से प्रमाद नहीं करना चाहिए, धर्म से प्रमाद नहीं करना चाहिये, कुशल (आरोग्यादि साधक) कर्म से प्रमाद नहीं करना चाहिये, ऐश्वर्य देने वाले मांगलिक कर्मो से प्रमाद नहीं करना चाहिये, पढ़ने पढ़ाने से प्रमाद नहीं करना चाहिये, देव और पितृकर्म से प्रमाद नहीं करना चाहिये।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि, तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि, तानि त्वयोपास्यानि, नो इतराणि।।

माता का देवता के सामान आदर करने वाले बनो। पिता का देव के समान सम्मान करने वाले बनो। आचार्य का देव के समान पूजन करने वाले बनो। जो निर्दोष कर्म हैं वे तुम्हें करने चाहिए, अन्य दोषयुक्त कर्म नहीं करने चाहिये। हम आचार्यो के जो शुभ आचरण हैं, वे तुम्हें नियम से करने चाहिये, दूसरे कर्म यदि आचार्य करें, तो भी तुम्हें नहीं करने चाहिये।।

ये के चास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणाः, तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया

देयम्। संविदा देयम्।।

जो कोई ब्राह्मण अपने से श्रेष्ठ हैं, उन्हें आसनादि देकर तुम्हें उनका श्रम दूर करना चाहिये। श्रद्धा से दान देना चाहिये, श्रद्धा नहीं हो तो भी देना चाहिये, अपने वैभव के अनुसार देना चाहिए, लज्जा से देना चाहिए, शास्त्र के भय से देना चाहिए, विचारपूर्वक देना चाहिए।।

भाव यह है कि श्रद्धापूर्वक तो देना ही चाहिए पर मन में देने की श्रद्धा या भावना न हो तो भी देना चाहिए। और कुछ नहीं तो इस लोक-लज्जा को सोच कर ही देना चाहिए कि मैं नहीं दूँगा तो दूसरे लोग क्या कहेंगे। ओर नहीं तो समाज तथा लोक और परलोक के भय से ही देना चाहिए, पर कुछ न कुछ देना अवश्य देना चाहिए। किसी न किसी प्रकार दान देने की आदत रहनी चाहिए।

अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः अलूक्षा धर्मकामाः स्युः यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा अत्र वर्तेथाः।।

यदि कदाचित् तुझे श्रौत और स्मार्त अथवा अन्य किसी कर्म में संशय हो अथवा लौकिक आचार में संशय हो तो जो ब्राह्मण विचारशील, कर्म में नियुक्त, स्वेच्छा से कर्मों का अनुष्ठान करने वाले, सरल शान्त स्वभाव वाले और धर्म की ही कामना वाले हैं, जैसे वे उस कर्म में अथवा व्यवहार में बर्तते हों, उसी प्रकार तुम्हें बर्तना चाहिए।।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाक् भवेत्।।

सब लोग सुखी हों। सब लोग सदा नीरोग रहें। सब का भला हो और कभी कोई दुःख ना देखें।

नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्ग नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।

मुझे राज्य, स्वर्ग या मोक्ष की भी कामना नहीं है। मैं तो दुःखी

लोगो का दुःख दूर कर देना चाहता हूँ।

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठान् हि मानवः।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमां गतिम्।।

वेदशास्त्रों के द्वारा बताए गए धर्मानुसार आचरण करने वाला मनुष्य इस लोक में यश और परलोक में परम पद को प्राप्त करता है।

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन्समायुक्तो नित्यः स्यादात्मवान्द्विजः।।

वेदशास्त्रों के बताए हुए मार्ग पर चलना या सदाचार का पालन ही परम धर्म है। इसलिए वेदोक्त सदाचार के पालन में सदा तत्पर रहना चाहिए।

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सपद्यते चरन्।।
चरैवेति चरैवेति।

अर्थात् सोए पड़े रहने वाला व्यक्ति कलियुग में जीता है। जब वह निद्रा को छोड़कर जंभाई लेने लगता या उठने की तैयारी करने में लग जाता है तो द्वापर-कर्तव्याकर्तव्य की दुविधा जनक स्थिति में आ जाता है। जब उठकर कर्म करने के लिए खड़ा हो जाता है तो त्रेता में और जब चल पड़ता है–अध्यात्म मार्ग की ओर अग्रसर हो जाता है–तो सत्युग जीवन की श्रेष्ठतम घड़ियों में पहुँच जाता है।

इसलिए चलते रहो, निरन्तर आगे की ओर बढ़ते रहो यही है आदेश वेद भगवान् का।

ॐ असतो मा सद्गमय।
ॐ तमसो मा ज्योतिर्गमय।
ॐ मृत्योर्मा अमृतं गमय।

हे भगवान् आप मुझे असत् से सत् की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलिए।

ग्रन्थकर्तुः परिचयः

मण्डले भीलवाड़ाख्ये राजस्थानेऽस्ति रायपूः।
बिहारीलालशर्मासीत्तत्र विद्वच्छिरोमणिः।।१।।
कालूरामो द्विजश्रेष्ठो, हरदेवश्च दैववित्।
पुत्रावेतौ तस्य जातौ, कर्मणि कुशलावुभौ।।२।।
उज्जैनसविधे कालूहेडां सोऽध्यवसच्चिरम्।
तत्रैव लब्धजन्मा श्रीकालूरामात्मजोऽस्म्यहम्।।३।।
अमृतसरसि लब्ध्वा ज्ञानसंपत्प्रकामम्,
निजविरचितग्रन्थावाप्तकीर्तिर्जनेषु।
द्युमणिरिव भवानीशंकरोऽसौ त्रिवेदो,
व्यरचयदतिरम्यं नित्यकर्मप्रकाशम्।।४।।
नित्यकर्मप्रकाशाख्यग्रन्थेनानेन सर्वदा।
सर्वसौख्यकरो देवो प्रीयतां मे सदाशिवः।।५।।
लोकाक्षिखाक्षिसंख्याते वैक्रमे नववत्सरे।
नित्यकर्मप्रकाशोऽयम्पूर्णः श्रीशप्रसादतः।।६।।

इति दिल्लीनगरनिवासिश्रीभवानीशंकरत्रिवेदरचितस्य कर्मकाण्डप्रकाशस्य 'नित्यकर्मप्रकाशाख्यः' प्रथमोभागः सम्पूर्णः।

श्रीरस्तु शिवमस्तु सर्वजगताम्।

तस्मिँल्ललितसुदेशे शाला मणिरचिता।
तन्मध्ये हरनिकटे गौरी मुदसहिता।
क्रीडा रचयति भूषारञ्जित निजमीशम्।
इन्द्रादिक सुर सेवत नामयते शीशम्।। हर०

विबुधवधु बहु नृत्यति हृदये मुदसहिता।
किन्नर गायन कुरुते सप्तस्वर सहिता।।
धिनकतथै थै धिनकत मृदंगं वादयते।
कण कण ललिता वेणुं मधुरं नाटयते।। हर०

रुण रुण चरणे रचयति नूपुरमुज्ज्वलिता।
चक्रावर्ते भ्रमयति कुरुते तां धिक तां।।
तां तां लु चुप तां तां डमरुं वादयते।
अंगुष्ठांगुलिनादं लासकतां कुरुते।। हर०

कर्पूरद्युतिगौरं पञ्चाननसहितम्।
त्रिनयनशशधरमौलिं विषधरकण्ठयुतम्।।
सुन्दरजटाकलापं पावकयुतभालम्।
डमरुत्रिशूलपिनाकं करधृतनृकपालम्।। हर०

मुण्डै रचयति माला पन्नगमुपवीतम्।
वामविभागे गिरिजारूपं अतिललितम्।।
सुन्दरसकलशरीरे कृतभस्माभरणम्।
इति वृषभध्वजरूपं तापत्रयहरणम्।। हर०

शंखनिनादं कृत्वा झल्लरि नादयते।
नीराजयते ब्रह्मा वेदऋचां पठते।।
अतिमृदुचरणसरोजं हृत्कमले धृत्वा।
अवलोकयति महेशं ईशं अभिनत्वा।। हर०

ध्यानं आरति समये हृदये अति कृत्वा।
रामस्त्रिजटानाथं ईशं अभिनत्वा।।
संगीतमेवं प्रतिदिनपठनं यः कुरुते।
शिवसायुज्यं गच्छति भक्त्या यःश्रृणुते।। हर०